जैन साहित्य कथामाला भाग ३

जैन इतिहास की प्रेरक कथाएँ

-- उपाध्याय अमरमुनि

श्री सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्मति-ग्रंथ-रत्नमाला का ९८ वाँ ग्रन्थ रत्न

जैन इतिहास
की
प्रेरक कथाएँ

उपाध्याय अमरमुनि

सन्मति ज्ञान-पीठ, आगरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुस्तक :

जैन इतिहास की प्रेरक कथाएँ

लेखक :

उपाध्याय अमरमुनि

सम्पादक :

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रकाशक :

सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी, आगरा–२८२००२

शाखा : वीरायतन
राजगृह–८०३११६ (नालंदा-बिहार)

मुद्रक :

वीरायतन मुद्रणालय, राजगृह

चतुर्थ संस्करण :

शरद पूर्णिमा, अक्टूबर–७, १९८७

मूल्य :

तीन रुपया, पच्चास पैसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथा की अर्थकारिता

भारतीय कथा-साहित्य के विभिन्न उद्देश्यों तथा अभिप्रायों में से एक मूल अभिप्राय है—उपदेश, सद्बोध या प्रेरणा। उपदेश या बोध-वचन मात्र कहानी नहीं हो सकते, किन्तु किसी भी रोचक एवं जीवनस्पर्शी घटना-सूत्र के माध्यम से जब जीवन की उदात्त प्रेरणा व्यक्त होती है, उसे हम उपदेश-कथा, बोध-कथा या प्रेरक-कथा कह सकते हैं।

जैन-साहित्य में इस प्रकार की सहस्रों प्रेरक कथाएँ संकलित हुई हैं, जिनके स्वरों में जीवन की कोई-न-कोई महान् प्रेरणा, कोई-न-कोई उदात्त विचार तथा कोई - न - कोई अद्भुत उपलब्धि का सरगम स्वर झंकृत होता सुनाई देता है।

सदाचार, ज्ञान, विवेक, तीतिक्षा, धैर्य, शान्ति, दीर्घप्रज्ञता, संतोष और आत्म-निरीक्षण आदि मानवीय गुणों से ही जीवन का परिष्कार और विकास होता है। उन्नत एवं महान् जीवन के लिए इन गुणों का आधार उसी प्रकार आवश्यक है, जिस प्रकार कि स्वस्थ जीवन के लिए शुद्ध प्राण-वायु।

मनुष्य स्वभावतः उपदेश-प्रिय नहीं, अनुकरण-प्रिय है, अनुकरण उसकी मूलवृत्ति है। वह उपदेश की अपेक्षा अनुकरण से ज्यादा और जल्दी सीख पाता है।

मनुष्य के मन में मानवीय गुणों की भावना और प्रेरणा जगाने के लिए उपदेशात्मक श्लोकों की अपेक्षा किसी अनुकरणीय चरित्र का आदर्श अधिक प्रभावशाली होता है चरित्रात्मक आदर्श उसकी अनुकरण वृत्ति को बड़ी शीघ्रता से उत्तेजित करता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आन्दोलित और गतिशील बनाता है। इसी मनोवैज्ञानिक भूमिका पर आदिकाल से आज तक कथा-साहित्य निरन्तर अपने असंख्य-असंख्य रूपों में व्यक्त होता रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक—'जैन इतिहास की प्रेरक कथओं'—में जीवन की उदात्त प्रेरणाओं को जगाने वाली एवं आत्मा की सुप्त सद्-वृत्तियों को आन्दोलित करने वाली कुछ प्रेरक कथाएँ ली गई हैं। जैन इतिहास के साथ इन कथाओं का सूत्र जुड़ा हुआ है। कुछ कथाएँ अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर सूचित की गई हैं, जिससे उनकी सार्वजनिक प्रेरणा एवं व्यापकता का अनुमान किया जा सकता है। 'तीन गाथाएँ, धर्म का सार' 'दीप-से-दीप जले,' आदि कुछ कथाओं का तो प्राचीन आचारांग और सूत्रकृतांग की निर्युक्ति में व चूर्णि में भी उल्लेख मिलता है। कुछ कथाएँ काल की दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन एवं प्रेरणा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होते हुए भी खोजने पर प्राचीन कथा - ग्रन्थों में उनका उल्लेख नहीं मिल सका। यद्यपि श्रुति-परम्परा में उनका महत्त्व शास्त्रीय कथाओं से कम नहीं हैं। जैसे— ब्रह्मचारी दम्पती (विजय और विजया) 'आखिर प्रश्न समाधान पा गया' आदि।

जिस कथा-ग्रन्थ या उपदेश-ग्रन्थ में जो कथासूत्र पहले से कुछ परिवर्तित या विकसित रुप में मिला है, उसका उल्लेख भी कथा के साथ ही कर दिया गया है। इससे कथासूत्र के ऐतिहासिक विकास, व सामयिक परिवेश की सामान्य जानकारी भी प्राप्त हो सकती है। उदाहरण के रूप में 'धर्म के तीन पद' कथा मूलत: ज्ञाता सूत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में है, किन्तु उत्तरवर्ती ग्रन्थों में कथा सूत्र ने जो नया व प्रेरक मोड़ लिया है, वह कथाओं की विकास-यात्रा का एक स्वतन्त्र अनुशीलनात्मक अध्याय है।

इस संग्रह की कुल तेरह कथाओं पर से जीवन के सम्बन्ध में जो मौलिक प्रेरणाएँ ध्वनित हुई हैं, वस्तुतः वे ही कथा-साहित्य की मूल थाती हैं। मुझे आशा और विश्वास है कि इन कथाओं को पाठक भले ही मनोरंजन के लिए पढ़ें, किन्तु पढ़कर उनके अन्तर्मन में जीवन का कोई-न-कोई सुन्दर विचार, महान् प्रेरणा और उदात्त संकल्प यदि एक बार भी जग उठा, तो कथा अपने आप कृत-कृत्य कथा हो जायेगी। इसी में लेखक, सम्पादक, प्रकाशक और पाठक के लक्ष्य, श्रम तथा समय की सार्थकता है!

वीर जयंती
२२ अप्रैल १९६७ } ——उपाध्याय अमरमुनि

चतुर्थ संस्करण

काफी समय से चतुर्थ संस्करण की मांग प्रेमी पाठकों की ओर से हो रही थी। विलंब प्रकाशकों की ओर से नहीं, मेरी ओर से ही था। मैं कथाओं का नये सिरे से परिष्कार करना चाहता था। परन्तु, कुछ स्वास्थ्य खराब, कुछ अवकाशाभाव, अतः जो चाहता था वह तो न कर सका, फिर भी यत्र - तत्र कलम ने अपना कुछ काम किया ही है, और उसी परिष्कार को साथ लिए यह चतुर्थ संस्करण प्रस्तुत है।

गाँधी जयंती
२ अक्टूबर १९८७ } ——उपाध्याय अमरमुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

जैन कथा-साहित्य माला का तृतीय भाग 'जैन इतिहास की प्रेरक कथाएँ' प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता है।

जैन इतिहास व परम्परा से सम्बन्धित कथाओं की मांग आज निरन्तर बढ़ती जा रही है। पाठक कथा-साहित्य को बहुत ही रुचि व चाव से पढ़ते हैं। महिलाएँ, विद्यार्थी व साधारण पाठक आदि की मांग को देखते हुए हमने जैन साहित्य-कथा-माला का प्रकाशन प्रारम्भ किया है। माला का यह तीसरा मनका है। पिछले दोनों मनके जब से पाठकों के हाथों में पहुँचे हैं, पाठक - वर्ग को उनसे संतोष ही नहीं, बल्कि उसकी कथा-साहित्य के अध्ययन की रुचि भी अधिक तीव्र हुई है, ऐसा हम पाठकों के पत्रों पर से कह सकते हैं।

श्रद्धेय उपाध्यायश्रीजी के विचारों में जो सहज स्पष्टता और महान् प्रेरणा रहती है, उससे जैन - समाज का पाठक तो आकृष्ट है ही, साथ ही जैनेतर पाठक भी बहुत अधिक आकृष्ट हो रहे हैं, यह प्रसन्नता की बात है। और, इसीका परिणाम है कि स्वल्प समय में ही प्रस्तुत पुस्तक का चतुर्थ संस्करण प्रकाशित कर रहे हैं।

कथा-माला के सम्पादन में श्री श्रीचन्द सुराना 'सरस' का जो सहयोग है, वह तो सहज आत्मीय है, उसके लिए औपचारिक धन्यवाद प्रदर्शित करने की कोई आवश्यकता भी नहीं है।

आशा है पिछले भागों की तरह इस भाग को भी पाठक उसी उत्साह और रुचि के साथ पढ़ेंगे।

मंत्री

सन्मति ज्ञान-पीठ, आगरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन इतिहास की प्रेरक कथाएँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

१.	ब्रह्मचारी दम्पती	१
२.	तीन गाथाएँ	८
३.	धर्म का सार	१९
४.	वह क्रोध को पी गया	२८
५.	दीप जलता रहा	३३
६.	क्षमा का आराधक	३६
७.	दीप से दीप जले	४१
८.	आखिर, प्रश्न समाधान पा गया	४९
९.	कहाँ से कहाँ ?	५४
१०.	दृढ़ प्रहारी : दृढ़ आचारी	६०
११.	शान्ति के मंगल सूत्र	६५
१२.	अक्षय कोष मिल गया	७०
१३.	अन्धकार के पार	८०

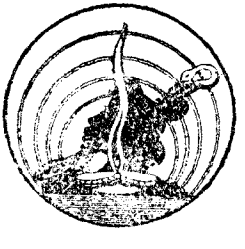

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कच्छदेश का वासी श्रेष्ठी अर्हद्दास बड़ा ही समृद्ध था, भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही विभूतियों से। उसकी पत्नी अर्हद्दासी भी बड़ी भगवद् - भक्त और धर्म - परायणा थी। प्रायः माता - पिता के संस्कार सन्तान में भी आते हैं। अस्तु, दोनों के उज्ज्वल संस्कारों का प्रतीक था, उनका इकलौता पुत्र—'विजय'।

यौवन के द्वार पर पहला कदम रखा ही था कि एक बार विजय ने सन्तों के श्रीमुख से 'ब्रह्मचर्य' का उपदेश सुना, जीवन - विकास में उसका महत्त्व समझा। सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण करने में अभी अपने को असमर्थ समझकर उसने ब्रह्मचर्य - सम्बन्धी एक सीमित संकल्प किया—"विवाह होने पर भी प्रत्येक शुक्ल - पक्ष में ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करूँगा।"

सत्संकल्प कभी - कभी कठोर परीक्षा लेते हैं। संयोग ऐसा मिला कि 'विजय' का विवाह उसी नगर के धनावह सेठ की कन्या 'विजया' के साथ हुआ। विजया रूपवती थी, सुशिक्षता थी और साथ ही धर्मशीला भी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सौभाग्य की प्रथमरात्रि को नव-परिणीता विजया भव्य वस्त्र-आभूषणों से अलंकृत हुई। सोलह शृंगार सजे और पति के शयन-कक्ष में आई। विजय ने प्रिय एवं मधुर वचनों से उसका स्वागत किया। प्रणय-वार्ता प्रारम्भ होने से पूर्व ही विजय ने अपने संकल्प को स्पष्ट करते हुए कहा—"प्रिये! तुम्हारा अनिन्द्य रूप, यौवन और सौन्दर्य पाकर मैं धन्य-धन्य हो गया हूँ। हमारा जीवन बहुत ही शान्त और सुखमय रहेगा। हम मर्यादापूर्वक सांसारिक सुखों का अनुभव करते हुए आदर्श जीवन जीएँगे। मैंने विवाह से पूर्व एक नियम लिया था, तदनुसार अब उसमें तीन दिन बाकी रह गए हैं।

विजया की लज्जावश झुकी हुई आँखें एकदम पति के चेहरे की ओर उन्मुख हो गईं—"क्या ?"

"यही कि मैं शुक्ल - पक्ष में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा। सुमुखी ! कोई बात नहीं, अब शुक्ल-पक्ष के सिर्फ तीन दिन ही शेष रहे हैं।"

विजया की आँखें गीली हो आईं। उसका चेहरा धूप से झुलसी हुई कमलिनी की तरह एकदम म्लान हो गया। उसकी आँखों के आगे जैसी पृथ्वी घूम उठी।

विजय ने पत्नी के कन्धे को झकझोरते हुए कहा—"विजया ! यह सब क्यों ? इतना खेद किसलिए ? तुम्हारी अवहेलना नहीं कर रहा हूं, केवल प्रतिज्ञा की बात ही तो बता रहा हूँ। सिर्फ तीन दिन ही तो बाकी हैं।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजया ने कहा—"स्वामी ! सिर्फ तीन दिन ही नहीं, पूरा जीवन ही बाकी रह गया है। अपने दाम्पत्य-जीवन के बीच नियम की एक अभेद्य दीवार खड़ी हो गई है। मैंने भी बचपन में कृष्णपक्ष के लिए सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य स्वीकार किया था। अतः आपसे अनुरोध करती हूँ कि आप किसी दूसरी श्रेष्ठी कन्या के साथ विवाह कर लीजिए, ताकि आपके माता - पिता की वंश - परम्परा आगे चल सके, और आप गृहस्थ - जीवन का आनन्द उठा सकें। मैं आपकी दासी हूँ, मेरी चिन्ता न करिए। मैं अपना समग्र-जीवन आपके चरणों में बैठकर आनन्दपूर्वक बिता दूंगी, पर आपको मैं ऐसे नहीं देख सकती। आप पुरुष हैं, दूसरा विवाह कर सकते हैं।"

बात सुनते ही विजय स्तम्भित-सा रह गया। जीवन की समूची कल्पनाएँ, भावनाएँ ही मोड़ खा गईं। इस विचित्र संयोग पर उसे रह - रहकर आश्चर्य होने लगा। कुछ क्षण दोनों ओर मौन छागया। दोनों की दृष्टि में, समुद्र की लहरों की तरह भविष्य के अथाह प्रश्न, एक के बाद एक उठकर आ रहे थे। विजय ने मौन को तोड़ते हुए कहा—"भद्रे ! कभी-कभी अनायास ही शुभ संयोग मिल जाता है। सौभाग्य से हमें आजन्म पवित्र ब्रह्मचर्य-व्रत पालने का जो शुभ अवसर मिला है, उसे हम हाथ से यों ही कैसे खो दें ? जीवन - शुद्धि की सच्ची साधना करते हुए हम दोनों सदा साथ रहेंगे। हमारा हृदय एक है, लक्ष्य एक है, फिर अलग - अलग दो पंथों की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्पना ही क्यों ? दूसरे विवाह की बात तो मेरे स्वप्न तक में न आएगी। क्या जीवन का उद्देश्य केवल भोग ही है, और कुछ नहीं ? जब तुम आजन्म ब्रह्मचर्य पाल सकती हो, तो मैं क्यों नहीं पाल सकता ? क्या पुरुष, नारी से दुर्बल है?"

विजया की आँखों में आश्चर्य चमक गया। उसने पति को बहुत-कुछ समझाया, दूसरे विवाह के लिए, कृत्रिम नहीं वास्तविक आग्रह किया। परन्तु, विजय अपने निश्चय पर मन्दराचल की तरह अविचल भाव से स्थिर रहा। आखिर दोनों ने एक साथ अपना महान् सत्संकल्प दुहराया— "हम साथ रहते हुए भी आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे।"

वह रात कितनी पुनीत होगी, और वह घड़ी कितनी पवित्र होगी। जब दम्पती ने एक शय्या पर बैठकर प्रथम-रात्रि में ही यह महान् सत्संकल्प किया था। अवश्य ही स्वर्ग के देवताओं ने धन्य - धन्य कहकर उन्हें प्रणाम किया होगा ? उन्हें अपनी भावभरी श्रद्धांजलियाँ अर्पण की होंगी ?

भाव - विभोर विजय ने विजया के मस्तक को ऊपर उठाते हुए एक और भीष्म-प्रतिज्ञा की—"सुमुखी ! हमारा यह सत्संकल्प माता-पिता भी जानने न पाएँ। व्यर्थ में ही उन्हें क्यों चिन्ता-चक्र में डाला जाए ? हमारी साधना गुप्त ही रहनी चाहिए। और, जिस दिन हमारी बात प्रकट हो जाएगी, हम दोनों संसार त्याग करके मुनि-धर्म की दीक्षा ले लेंगे। क्यों ठीक है न ?" पति की प्रतिज्ञा को पत्नी ने भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहर्ष मस्तक पर चढ़ाया। और, जीवन-रथ अपनी सहज-गति से आगे बढ़ता चला गया।

नई अंगड़ाई लेती हुई इठलाती जवानी, अनुकूल सुख-सामग्री, तरुण-दम्पति, एक शय्या और अखण्ड - ब्रह्मचर्य ! कितना विरोधी और विचित्र संयोग ! मास-पर-मास और ऋतु-पर-ऋतु बीतती चली गई। वर्ष भी कई आए और चले गए। परन्तु विजय-विजया के अखण्ड - ब्रह्मचर्य की ज्योति घट के भीतर रखे हुए दीपक की तरह अखण्ड-भाव से सतत प्रज्वलित होती रही। क्या मजाल, इधर-उधर का कोई भी हवा का झोंका आए, और ज्योति बुझ जाए, या कंप - कंपा जाए !

एक बार चंपानगरी के श्रीमन्त सेठ जिनदास ने 'विमल' नाम के केवलज्ञानी मुनि से पूछा— "भगवन् ! मैंने एक संकल्प किया है कि चौरासी हजार मुनियों को एक साथ अपने हाथ से पारणा करवाऊँ। प्रभो ! मेरा यह संकल्प कैसे पूर्ण होगा ? कब पूर्ण होगा ?"

विमल केवली ने बताया—"देवानुप्रिय ! इतने मुनियों का एक साथ समागम बहुत ही कठिन है। असम्भव प्राय है। फिर इतना शुद्ध भोजन मिलना, तो और भी कठिन है।"

"तो भन्ते ! मेरा संकल्प कैसे पूरा हो सकता है ?" सेठ ने पूछा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"चौरासी हजार मुनियों को पारणा कराने में जितना पुण्य होता है, उतना पुण्य शुक्ल और कृष्ण-पक्ष में ब्रह्मचर्य धारण करने वाले एक दम्पती को बहुमान एवं भक्ति के साथ भोजन कराने से हो सकता है।"

"भन्ते ! ऐसे दम्पती भरत क्षेत्र में कहीं हैं ?" सेठ ने विनय पूर्वक पूछा।

मुनि ने विजय और विजया के गुप्त ब्रह्मचर्य का सांगोपांग परिचय देते हुए सेठ जिनदास को उनकी भक्ति करने के लिए कहा।

जिनदास अंग देश से सपरिवार सुदूर कच्छ देश में पहुंचा। और अगाध श्रद्धा एवं भक्ति से विजय दम्पती की प्रशंसा करता हुआ भक्ति करने लगा। उन्हें बड़े ही प्रेमाग्रह से अपने यहाँ निमंत्रित कर भोजन भी कराया। सेठ जिनदास के आनन्द की कोई सीमा न रही।

लोगों ने जब इतनी दूर से आने का कारण पूछा, और उत्तर में जिनदास के मुँह से केवली द्वारा बताया हुआ यह ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी रहस्य सुना, तो उनके आश्चर्य का कोई पार न रहा। अब तो नगर का जन-जन विजय और विजया दम्पती को भगवान् की तरह पूजने लग गया।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य की बात प्रकट होने पर विजय एवं विजया ने अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार मुनिव्रत स्वीकार कर लिया, और निर्मल एवं कठोर साधना करके मोक्ष गति प्राप्त की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजय और विजया का कामविजेता के रूप में यह अद्-भुत उदाहरण संसार के इतिहास में अपने ढंग का एक ही ज्योतिर्मय उदाहरण है। कितना कठोर संयम ! कितना उच्च मनोबल !! ब्रह्मचर्य का यह महान् आदर्श युग-युगान्तर के लिए अध्यात्म-प्रेरणा का कभी न बुझने वाला नन्दा-दीप सदा प्रज्वलित रहेगा।

— उपदेशप्रासाद, स्तंभ ६।८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा यवराज जीवन के संध्या काल में संसार से विरक्त होकर सद्गुरु आचार्य के पास दीक्षित हो गए। जब मन में वैराग्य जग पड़ा, तो विशाला का विशाल राजवैभव भी उनके बढ़ते चरणों को रोक नहीं सका। राजकुमार गर्द्द-भिल्ल अभी बालक था, और उससे छोटी थी राजकुमारी अणुल्लिका। इसलिए राज्यभार महामात्य दीर्घपृष्ठ के कंधों पर था। राज्य-सूत्र का संचालन वही करता था।

राजर्षि के मन में संयम-साधना के प्रति हार्दिक उत्साह था। सेवा और वैयावृत्य के अवसर पर भी वे किसी से पीछे नहीं रहते थे। पर, जब शास्त्राध्ययन का प्रसंग आता, तो अपनी ढलती अवस्था को देख कर निरुत्साह हो जाते। उत्साह ही तो मनुष्य को आगे बढ़ाता है। और, जब वही क्षीण हो जाए, तो फिर प्रगति शून्य में भटक कर रह जाती है। आचार्य राजर्षि को बार-बार अध्ययन की प्रेरणा देते रहते। ज्ञान का महत्त्व समझाते, अभ्यास करने के लिए उत्साहित करते। किन्तु, राजर्षि यह कहकर टाल देते कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"बुढ़ापे में बुद्धि पक गई, स्मृति मंद हो चली। क्या करूँ ? अब कुछ याद ही नहीं हो पाता।"

आचार्य ने राजर्षि में अध्ययन की जिज्ञासा-जगाने का एक मार्ग सोचा। उन्हें विशाला के नगरजनों व राज-परिवार को उपदेश देने के लिए विशाला भेजा। आचार्य की आज्ञा स्वीकार करके यवराज ऋषि चल पड़े। चलते-चलते मार्ग में एक वृक्ष की छाया में विश्राम करने के लिए बैठे। पास ही में एक जौ का खेत लहलहा रहा था। पकी-पकी सुनहली बालें देखकर खेत के किनारे खड़े एक गधे के मुँह में पानी छूटा आ रहा था। वह बार-बार खेत में घुसने की कोशिश कर रहा था, किन्तु सामने डंडा लिए खड़े किसान को देख-कर फिर पीछे हट जाता। उसकी यह चेष्टा देखकर किसान एक गाथा गुनगुनाने लगा—

"ओहावसि पहावसि, ममं चेव निरक्खसि।
लक्खिओ ते अभिप्पाओ, जवं भक्खेसि गद्दहा।"

"—हे गर्दभ ! तू इधर - उधर क्यों घूम रहा है ? आगे बढ़ता है, पीछे हट जाता है। मुझे ही देख रहा है न ? यव (जौ) खाने का तेरा विचार है—मैं समझ गया।"

किसान के मुँह से यव ऋषि ने यह गाथा सुनी। उन्हें बड़ी अच्छी लगी। सोचा—चलो, इसी गाथा का सहारा लेकर एक दिन का उपदेश कर देंगे। मुनि ने गाथा रट ली। दिल-चस्पी होती है, तो हर चीज याद हो ही जाती है। मुनि गाथा को याद करके आगे बढ़ चले।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यव ऋषि एक गाँव में पहुंचे। गाँव के बाहर मैदान में बालक 'गिल्ली-डंडा' खेल रहे थे। गिल्ली कहीं दूर गड्ढ़े में जा गिरी, तो बालक उसे इधर - उधर खोजने लगे। एक बालक, जो खेल में बड़ा चतुर था, उसने एक गाथा बोली–

"इओ गया, तओ गया, जोइज्जती न दीसई।
अम्हे न दिट्ठा, तुम्हे न दिट्ठा, अगडे छूढ़ा अणुल्लिया ॥"

"–इधर से गई, उधर से गई। देखने पर भी कहीं दिखाई नहीं दे रही है। न हमने देखी, न तुमने देखी। मालूम होता है, वह गड्डे में पड़ी है।"

बालक के मुँह से गाथा सुनकर मुनि के पाँव वहीं रुक गए। गाथा बड़ी अच्छी लगी, मुनि ने इसे भी याद कर लिया। अब दो दिन के उपदेश की तैयारी मुनि के पास हो गई, वे वहाँ से आगे चल पड़े।

पद-यात्रा करते-करते यव राजर्षि विशाला नगरी में पहुंचे। नगर में पहुंचते - पहुंचते संध्या हो गई, तो यव मुनि नगर के बाहर एक कुम्भकार के घर पर ही रात्रि - विश्राम के लिए ठहर गए।

मुनि के सामने ही एक ओटले (अन्दर के चबूतरे) पर कुम्भकार बैठा था। उसने देखा कि एक चूहा बार - बार उसके आस-पास बड़े मजे से दौड़ रहा है। कुम्भकार थोड़ा-सा हिला, तो चूहा मारे डर के भाग गया। फिर आया, और कुम्भकार को देखते ही डरकर फिर बिल में घुस गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चूहे की यह भयाकुल स्थिति देखकर कुम्भकार का सरल मन गुदगुदा उठा। उसने चूहे को लक्ष्य करके गाथा कही—

"सुकुमालग भद्दलया, रत्तिं हिंडणसीलया।
मम पासाओ नत्थि ते भयं, दीहपिट्ठाओ ते भयं॥"

"—हे सुकुमार भद्र मूषक! मुझे मालूम है— रात के अंधेरे में इधर-उधर घूमते रहने का तेरा स्वभाव है तो भाई, आनन्द से घूमो-फिरो। मुझ से क्यों डर रहे हो? तुम्हें मुझ से कोई भय नहीं, भय तो दीर्घ-पृष्ठ (सांप) से है।"

यव ऋषि ने कुम्भकार के मुँह से यह गाथा सुनी और याद कर ली। मुनि बैठे - बैठे मार्ग में सुनी हुई पहले की दोनों गाथाएँ और तीसरी यह—इस प्रकार तीनों गाथाएँ बार - बार दुहरा रहे थे।

* * * * *

राजकुमार गर्दभिल्ल बड़ा होने के बाद शासन-सूत्र स्वयं संभालने लग गया था। मंत्री दीर्घपृष्ठ स्वयं को राज्य का पितामह समझता था, अतः प्रत्येक राज - काज में हस्तक्षेप करता और राजाज्ञा से भी अधिक अपनी आज्ञा का गौरव रखना चाहता। गर्दभिल्ल को यह सह्य नहीं था। उसका युवा पौरुष मंत्री के हाथ की कठपुतली बनना कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता था। युवक राजा और वृद्ध मन्त्री के बीच यह मानसिक द्वन्द्व बढ़ता चला गया। दीर्घपृष्ठ तो घाघ था, उसने इस संघर्ष के मूल राजा को ही समाप्त करके अपने पुत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को राज - गद्दी पर बैठाने का षड्यंत्र रचा। राजकुमारी अणुल्लिका बड़ी सुन्दर और चतुर थी। मंत्री ने उसे भी अपनी पुत्र-वधू बनाने के लिए अपने महल के तहखाने में बन्द कर दिया। गर्दभिल्ल ने बहन की बहुत खोज की, पर कहीं अता-पता नहीं लगा। इधर राजा की हत्या का षड्यंत्र चल ही रहा था कि मंत्री को यव राजर्षि के आगमन की सूचना मिली। मन्त्री घबड़ा गया, सोचा—"राजर्षि ने यदि अपने ज्ञान-बल से मेरा भंडाफोड़ कर दिया, तो मैं कहीं का भी न रहूँगा। यह तो काँटा है, रात-रात में इसे समाप्त कर डालना चाहिए। पर, राजर्षि की हत्या? यदि राजा को खबर मिली, तो इसका परिणाम क्या होगा?"—दीर्घपृष्ठ इन्हीं गहरे विचारों में उलझ गया।

"·····पिता की हत्या, पुत्र के हाथ से। यही तो राज-परम्परा का इतिहास रहा है।"—दीर्घपृष्ठ के धूर्त दिमाग में सहसा एक विचार उठा, और रात के अन्धकार में अकेला ही राजमहल की ओर चल पड़ा।

राजकुमार ने रात में मन्त्री को आया देखकर आश्चर्य किया। मन्त्री बहुत गम्भीर था। कोई बहुत गहरी चिंता उसके चेहरे पर छाई हुई थी। राजकुमार भी गम्भीर हो गया। दोनों मन्त्रणा-कक्ष में चले गए।

मन्त्री ने राजकुमार को बहकाया—"यव राजर्षि साधना से भ्रष्ट होकर पुनः राज्य हथियाने के लिए आ रहे हैं। वे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नगर के बाहर अमुक कुंभकार के घर पर ठहरे हैं। एक योग भ्रष्ट राजा पुनः राजसिंहासन पर बैठे, इससे तो विशाला की उज्ज्वल राज-परम्परा का गौरव कलंकित हो जाएगा। और फिर राज्य-च्युत होने के बाद आपके शौर्य और पराक्रम का भी क्या मूल्य रहेगा ? क्षत्रिय का राज्य-च्युत हो जाना मृत्यु से भी बढ़कर है। इसलिए सोचिए, क्या किया जाए ? मैं इसीलिए आपकी सेवा में आया हूँ कि जैसे भी हो, रात-ही-रात में ही इस महान् संकट का प्रतिकार कर देना चाहिए। अन्यथा प्रातः राजर्षि नगर में आएँगे, राज्य माँगेंगे। और हो सकता है, जनता में विद्रोह भी फैला दें। राज्य में गृह - युद्ध खड़ा हो जाने पर आप कहीं के भी न रहेंगे।"

मन्त्री की कपटपूर्ण बातों में राजकुमार बहक गया। कुछ क्षण तो उसे विश्वास नहीं हुआ, किन्तु मन्त्री का कपट इतना गूढ़ था कि उसके चेहरे पर उसकी झलक भी नहीं थी, वही गम्भीरता और राज - भक्ति का ढोंग ! राजकुकार ने कहा—"मन्त्रिराज ! आप ही बतलाइए, इस संकट से राज्य की किस प्रकार रक्षा की जाए ?"

मन्त्री बोला—"महाराज ! राज्यसत्ता को हड़पने की कोशिश करने वाला चाहे भाई हो, पुत्र हो, या पिता हो, वह राज्य का शत्रु है। और, शत्रु के लिए क्षत्रिय की तलवार ही अन्तिम फैसला करती है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"·····तो क्या राजर्षि की हत्या"···राजकुमार चौंक पड़ा।

मन्त्री ने गम्भीर होकर कहा—"राजधर्म तो यही कहता है। अन्यथा पितृधर्म का पालन करना हो, तो राज छोड़कर संन्यास ले लीजिए, और राज - सिंहासन पिताजी को सौंप दीजिए।"

"नहीं, यह तो नहीं हो सकता ! और इधर पितृ-हत्या··· ऋषि-हत्या···! यह भी कैसे सम्भव हो सकता है ?"

"महाराज ! जो ऋषि संसार के भोगों को ठुकरा कर पुनः उन्हीं के दलदल में फँसना चाहे, वह कैसा ऋषि ? और पिता पुत्र को राजा बनाकर पुनः उसे सेवक बनाने के लिए प्रयत्न करे, वह कैसा पिता ?" आप अपना राज-धर्म भूल रहे हैं। राजनीति में न कोई पिता है, न पुत्र। न कोई बन्धु है, न मित्र ! सर्वोपरि अपनी सत्ता की रक्षा है। राज सत्ता की रक्षा के लिए जो कुछ भी करना पड़े, वह सब राज-धर्म है।"

मन्त्री की बात पर राजकुमार चुप था। कुछ क्षण कर्तव्य-विमूढ़-सा सोचता रहा और फिर एकदम हाथ में तलवार लेकर खड़ा हो गया। "अच्छा, आप जाइए, मैं हर मूल्य पर अपने राज-धर्म की रक्षा करूँगा।"

मन्त्री का तीर ठीक निशाने पर लगा। राजकुमार अंधेरी रात में अकेला हाथ में तलवार लिए चल पड़ा—पिता की हत्या करने ! एक ऋषि का खून करने !

कुंभकार के घर के बाहर राजकुमार दबे पाँव इधर-उधर घूमने लगा। भीतर से कुछ आवाज आ रही थी। एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बड़े से छेद में से राजकुमार ने अन्दर में झाँक कर देखा, तो राजर्षि बैठे कुछ गुन-गुना रहे थे।

राजकुमार सहम गया। मुनि के मुँह से प्रथम गाथा का घोष सुना, तो उसे लगा—"राजर्षि ने मुझे देख लिया है। मालूम होता है, मेरे अभिप्राय को समझ गए हैं। राजकुमार के पाँव वहीं ठिठक गए। मुनि ने वही गाथा फिर दुहराई—

"ओहावसि पहावसि, ममं चेव निरक्खसि।
लक्खिओ ते अभिप्पाओ, जवं भक्खसि गद्दहा !"

राजकुमार ने सोचा—सच ही मुनि मुझे सम्बोधित करके ही कह रहे हैं— "गदहा (गर्दभिल्ल !) तू इधर-उधर घूम रहा है, मुझको बार-बार देख रहा है। मैं समझ गया—तू यव (यव राजर्षि) को खा जाना चाहता है।"

राजकुमार के हाथ की तलवार नीचे झुक गई। सोचा- "राजर्षि ज्ञानी हैं। मेरा अभिप्राय जान चुके हैं। पर देखता हूँ, मेरे मन के अन्दर की (बहन के खो जाने की) चिन्ता-ग्रन्थि को खोल सकते हैं या नहीं ?" तभी मुनि ने दूसरी गाथा दुहराई—

"इओ गया, तओ गया, जोइज्जती न दीसई।
अम्हे न दिट्ठा तुम्हे न दिट्ठा, अगड़े छूढ़ा अणुल्लिया।"

—इधर से गई, उधर से गई। अणुल्लिया (राजकन्या) न तुम्हें दिखाई दी, न मुझे ही। किन्तु मालुम होता है—वह अगड़ (तहखाने) में पड़ी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा सुनते ही राजकुमार के मन की गाँठ खुल गई। सोचा—मुनि ने स्पष्ट बतला दिया है कि अणुल्लिका (राजकुमारी) अगड़ में पड़ी है। अवश्य ही किसी ने उसे भूमि-गृह में छिपा रखा है। राजकुमार का विचार घूम गया। इतने ज्ञानी होकर भी मुनि मेरा राज्य छीनने के लिए आए हैं? बड़े ज्ञानी और प्रभावशाली हैं ये तो। वस्तुतः बहुत बड़ा खतरा है, जनता सब इन्हीं के पक्ष में हो जाएगी। और ये एक ही झटके में राज्य छीन लेंगे। इन्हें मारा भी कैसे जाए? ये मेरा विचार तो जान चुके हैं। तभी मुनि ने तीसरी गाथा दुहराई—

"सुकुमालग भद्दलया, रत्तिं हिंडणसीलया।
मम पासाओ नत्थि ते भयं, दीहपिट्ठाओ ते भयं॥"

—सुकुमार, मैं जनता हूँ—रात के अंधकार में घूमने की तेरी आदत है। तो घूम मजे से, डर क्यों रहा है? मेरे से तुझे कोई भय नहीं है, भय है तो दीर्घपृष्ठ (मंत्री) से है।

तीसरी गाथा सुनते ही राजकुमार के सामने जैसे बिजली कौंध गई। सोचा— "मुनि ने मेरे सब विचार और प्रयत्न समझ लिए हैं। इसलिए साफ चेतावनी दे रहे हैं कि—मुझसे तुझे कोई भय नहीं है। पर, दीर्घ-पृष्ठ (मंत्री) से तुझे भय है! मंत्री से क्या भय हो सकता है? वह तो मेरे राज्य का संरक्षक है। नहीं, नहीं! मुनि तो मनोज्ञानी हैं। जब ये कह रहे हैं, तो अवश्य ही दाल में कुछ काला है। चलूँ अभी मुनि के चरणों में गिरकर क्षमा मांगूँ। इनका उद्देश्य तो पवित्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्म-साधना का है। निरर्थक ही मैं भटक गया। इतना बड़ा पापाचार! पिता की हत्या! और वह भी ऋषि की।" राजकुमार के विचारों में एकदम परिवर्तन आ गया। वह मुनि के सामने आकर चरणों में गिर पड़ा, और रोने लगा।

मुनि ने अचानक ही अंधेरी रात में राजकुमार को अकेला आया देखा, तो विस्मय में डूब गए। पर हाथ में नंगी तलवार और फूट-फूट कर रोना— उसके आने का अभिप्राय स्पष्ट बता रहे थे। मुनि ने उसे आश्वस्त किया। राजकुमार ने अपना दुष्ट उद्देश्य बताते हुए मुनि से क्षमा माँगी।

मुनि सन्न रह गए। एक पुत्र राज्य-लोभ से पिता की हत्या, नहीं, एक ऋषि की हत्या करने को भी तैयार हो सकता है? सिर्फ बहकाव और सत्ता का लालच!

मुनि ने राजकुमार को सान्त्वना दी। वे तो सहज क्षमामूर्ति थे, वहाँ क्रोध और घृणा का काम ही क्या?

राजकुमार महल में लौट आया। मंत्री के प्रति उसका मन आशंकाओं से भर गया। मंत्री की मीठी बातों में उसे कपट का जहर छलछलाता दिखाई दिया। प्रातः होते-होते राजा ने मंत्री के घर को घेर कर तलाशी लेने का आदेश दे दिया। चारों ओर सशस्त्र सैनिक तैनात कर दिए। मंत्री और उसका परिवार सेना के पहरे में था। राजकुमार स्वयं मंत्री के भूमि-गृहों की तलाशी लेने निकला। एक भूमि-गृह में राजकुमारी अणुल्लिया मुरझाई हुई चंपकलता-सी उदासीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बैठी मिल गई। राजकुमारी को इस प्रकार प्राप्त कर मंत्री के प्रति राजकुमार को तो रोष हुआ ही, जनता में भी रोष का तूफान उमड़ आया। राजकुमार ने मंत्री के कुकृत्यों का भण्डाफोड़ करके उसे सपरिवार तुरन्त देश से निकल जाने का आदेश दे दिया।

नगर-जनों की अपार भीड़ अब महान् ज्ञानी यव राजर्षि के स्वागत में उमड़ पड़ी। राजर्षि ने विशाला के नागरिकों एवं राज - परिवार को उपदेश दिया। ज्ञान और विद्या का चमत्कार छिपा नहीं रहा। उन्होंने बताया कि "तीन लघु-गाथाएँ किस प्रकार अनेक अनर्थों से बचाकर मेरे अपने जीवन को ही नहीं, किन्तु नष्ट - भ्रष्ट होते विशाला के साम्राज्य को भी उबारने में समर्थ हो सकीं।" ज्ञान और अध्ययन के प्रति मुनि के हृदय में तीव्र उत्कंठा जागृत हो गई। मुनि की सजीव प्रेरणा से विशाला के, वृद्ध, तरुण, स्त्री-पुरुष ज्ञानोपासना में जुट गए।

एक छोट-सी घटना ने वह परिवर्तन कर दिया कि एक जन्म का ही नहीं, किन्तु अनन्त - अनन्त जन्मों का अज्ञान नष्ट हो कर ज्ञान का महाप्रकाश जगमगा उठा।

—भक्त परिज्ञा प्रकीर्णक ८७, उपदेशप्रासाद १५/२१४
—आख्यानक मणिकोश (आम्रदेवसूरि) १४/४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म का सार

चम्पानगरी में सिंहसेन नामक एक महान् राजा था। उसके महामंत्री का नाम था रोहगुप्त। वह बड़ा ही चतुर, नीतिज्ञ और धर्म का जानकार था। कोई भी काम करता, उसमें राजा और प्रजा दोनों का हित समाया रहता। इसलिए राजा उसको जितना सम्मान देता था, जनता भी उसके प्रति उतना ही स्नेह और आदर का भाव रखती थी।

एक बार राज-सभा में धर्म-चर्चा छिड़ गई। भिन्न-भिन्न मत के मानने वाले अनुयायी अपने - अपने मत और पंथ की बड़ाई करने लगे। राजा ने इस वाद - विवाद पर प्रतिक्रिया जानने के लिए मंत्री की ओर देखा, मंत्री मौन था।

राजा ने कहा— "मंत्री, तुम भी इस 'वाद' में अपनी बात कहो न ? चुप क्यों हो ?"

मंत्री ने नमस्कार की विनम्र मुद्रा में उत्तर दिया— "महाराज ! यह कोई वाद है ? जहाँ पर धर्म और तत्त्व की जानकारी के छिए तटस्थ भाव से चर्चा की जाती है, वह 'वाद' तो श्रेष्ठ है। किन्तु जब जय - पराजय की भावना से पहलवानों की तरह दाव-पेंच खेलकर एक-दूसरे को पछाड़ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की चेष्टा होती है, तो वह 'वाद' वाद नहीं, 'विवाद' होता है। कौन भला आदमी उसमें भाग लेकर, व्यर्थ का झगड़ा मोल ले। वहाँ तो चुप रहना ही अच्छा है।"

"तो, फिर तत्त्व की जानकारी कैसे हो सकती है? चर्चा करने से ही तो सत्य और असत्य का भेद खुलता है।"

मंत्री ने गम्भीरता-पूर्वक उत्तर में कहा—"महाराज! तत्त्व की जानकारी के लिए कभी एक धर्म-सभा का आयोजन करें। जिसमें सभी धर्मों के विद्वान् आएँ और अपने-अपने विचार प्रस्तुत करें। तत्त्व-चर्चा, अधिकारी विद्वानों के साथ होनी चाहिए, साधारण जनता के साथ नहीं।"

मंत्री की सूझ-बूझ पर राजा को भरोसा था। उसने सहर्ष स्वीकृति दी और निर्धारित समय पर एक विशाल धर्म-सभा के आयोजन का कार्य प्रारम्भ हो गया। नगर में धर्म-सभा की उद्घोषणा करवा दी गई। और, साथ ही आनेवाले विद्वानों को एक समस्यापूर्ति करके लाने का निवेदन भी किया गया। समस्या मंत्री ने रखी—

'सकुण्डलं वा वयणं न वत्ति।'

समस्या की सर्वोत्तम पूर्ति पर इच्छित दान एवं 'राज-गुरु' का सम्मानित पद देने की घोषणा भी की गई।

निश्चित दिन पर राज-सभा में बड़े-बड़े विद्वानों का जमघट लग गया। परिव्राजक, तापस, त्रिदंडी, शैव, शाक्त, बौद्ध आदि बड़े-बड़े धर्म-गुरु अपने-अपने शिष्यों के दल-बल के साथ राज-सभा में उपस्थित हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राज-दरबार एक - से - एक सुन्दर भित्ति - चित्रों एवं विविध कला पूर्ण दृश्यों, मालाओं आदि से सुसज्जित था। प्रत्येक धर्म-गुरु के लिए अपना - अपना स्वतन्त्र आसन लगा हुआ था। राजा सबके सामने एक रत्न-जटित मयूर-सिंहासन पर आसीन था। एक ओर महामंत्री रोहगुप्त अपने आसन पर धीर - गम्भीर मुद्रा में बैठे सभा के कार्यक्रम का संचालन कर रहे थे। राज-सभा का विशाल भवन दर्शकों एवं श्रोताओं से खचाखच भरा था। सभी की आँखों में आज एक नयी उत्सुकता थी।

सभा का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। मंत्री के संकेत पर सर्वप्रथम एक अधेड़ उम्र के धर्म-गुरु उठे और खँखारते हुए उन्होंने समस्या-पूर्ति का अपना श्लोक पढ़ा—

"भिक्खं पविट्ठेण मएज्ज दिट्ठं,
पमयामुहं कमलविसालनेत्तं।
वक्खित्तचित्तेण न सुट्ठु नायं,
सकुंडलं वा वयणं न वत्ति॥"

—"आज भिक्षा के निमित्त मैंने एक घर में प्रवेश किया। वहाँ पर कमल-जैसी विशाल आँखों वाली एक सुन्दरी का मुख दिखाई पड़ा, तो मेरा चित्त विक्षिप्त हो उठा। उसके रूप को निहारते-निहारते मैं यह जान ही न पाया कि उसका मुख कुंडलों की झिलमिलाती ज्योति से शोभित है या नहीं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म-गुरु के मुख से शृङ्गार - रस का पद सुनकर कुछ रसिक वाह-वाह कर उठे, पर राजा गम्भीर हो गया। 'साधु होकर युवती का सुन्दर मुख देखते ही व्याकुल हो उठा। कैसी है इसकी साधुता ? साधु तो नारी - मात्र में निर्मल मातृत्व के दर्शन करता है, उसके रूप को नहीं, आत्मा को देखता है। पर, यह तो उसकी रूप-ज्योति पर ही पतंगा बना हुआ लगता है। इस उक्ति में सच्ची साधुता की ध्वनि नहीं, अपितु किसी रसिक हृदय के भोग-विलास की धड़कन है।"

मंत्री ने दूसरे धर्म-गुरु की ओर संकेत किया। वे भी अपनी लम्बी यष्टि को संभाले सभामंच पर आए और उदात्त स्वर से श्लोक-पाठ शुरू किया—

"फलोदयेणं मि गिहं पविट्ठो,
तत्थासणत्था पमया मि दिट्ठा।
विक्खित्तचित्तेण न सुट्ठु नायं,
सकुंडलं वा वयणं न वेत्ति।"

"मैं प्रातःकाल फल एवं जल ग्रहण करने के लिए एक घर में गया, वहाँ आसन पर बैठी एक सुन्दर तरुणी को देखा, तो मेरी आँखें चुंधिया गईं। मैं यह निर्णय नहीं कर सका कि उसका मुख कुण्डल की आभा से युक्त है, कि नहीं?"

राजा ने देखा, यह भाषा भी किसी धर्म-गुरु की नहीं हो सकती, धर्म के परिवेश में किसी रसिक हृदय की भाषा है। सौन्दर्य - मुग्ध होने के कारण वह उसके कुण्डल से युक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुख को ठीक तरह नहीं देख पाया। अतः इस श्लोक में भोग से विरक्ति जैसी कोई ध्वनि नहीं है।

राजा और मंत्री का गम्भीर मौन स्पष्ट सूचित कर रहा था कि उन्हें जो जीवन-दर्शन चाहिए था, वह इन धर्म गुरुओं द्वारा की गई समस्या पूर्ति में नहीं मिल रहा है।

तभी एक धर्माचार्य सभामंच पर आए। सभासदों पर प्रेमल दृष्टि डालते हुए उन्होंने अपनी मधुर स्वर-लहरी वायुमण्डल में गुंजित की—

"मालाविहारे मइ अज्ज दिट्ठा,
उवासिया कंचणभूसियंगी।
विक्खित्तचित्तेण न सुट्ठु नायं,
सकुंडलं वा वयणं न वेत्ति॥"

—"माला - विहार में आज मैंने एक उपासिका को देखा। उसका शरीर सुन्दर वस्त्र और स्वर्णाभरणों से मंडित था। मेरा चित्त उसके रूप-दर्शन से इतना व्याकुल हो गया कि मैं ठीक तरह जान ही नहीं पाया—उसका मुख कुण्डल सहित है या नहीं ?"

इस प्रकार सभा - मंच पर अनेक धर्म - गुरु आए और श्लोक सुनाकर अपने-अपने आसनों पर जा बैठे।

राजा ने देखा— "सबकी भावना का प्रवाह नारी के क्षणिक सौन्दर्य में बह रहा है। कोई उसकी कमल-सी आँखें देखकर चकित होता है, तो कोई उसके कांचन-भूषित अंग पर मुग्ध होकर देखता-का-देखता ही रह जाता है। लगता है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मशास्त्रों का वैराग्य अभी हृदय में उतरा नहीं है। धर्म-गुरु के मुख से जो गुरुजनोचित बात सुनना चाहता था, वह अभी तक किसी ने नहीं सुनाई।" राजा ने मंत्री की ओर देखा—"क्यों···जैन मुनि सभा में नहीं आए ? क्या उन्हें निमन्त्रण नहीं दिया तुमने ?"

"महाराज ! वे इस प्रकार के आदेश एवं निमन्त्रण पर नहीं आते हैं"—मंत्री ने कहा।

·····"तो निवेदन करना चाहिए था। अभी तक की चर्चा में तो कोई रस नहीं आया। एक ही घिसी-पिटी बात घसीटी जा रही है। कुछ तो हो·····।"

तभी मंत्री की दृष्टि सभा - द्वार पर पड़ी कि सामने राज-मार्ग पर एक क्षुल्लक मुनि (छोटा साधु) भिक्षा के लिए कहीं जा रहा है। मंत्री ने एक योग्य अधिकारी को भेजकर मुनि से राजसभा में आने का आग्रह किया।

क्षुल्लक मुनि अपनी मस्त चाल से चलता हुआ राज-सभा में आया। राजा ने देखा कि बहुत छोटी आयु का साधु है, अभी तो जवानी भी पूरी नहीं फूटी है। आँखों में से बच-पन झाँक रहा है। चेहरे पर बालसुलभ सहज निश्छलता है। भला, यह इन दिग्गज विद्वानों के सामने क्या समस्या पूर्ति करेगा ? किंतु तभी पर्वत-शृंग जैसे विशाल काय हाथियों के बीच छोटे से सिंह-शिशु के समान बाल-साधु को निर्भय और निर्द्वन्द्व खड़ा देखकर राजा अन्तर् में आश्वस्त भी हुआ, कि कुछ तो है, बिल्कुल खाली तो नहीं मालम होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"मंत्री ने कहा—"मुनिवर ! इस धर्मसभा में एक समस्या चल रही है। आप भी इस पर श्लोक बना कर सुना सकते हैं ?"

क्षुल्लक साधु ने बड़े ही निर्भय स्वर में कहा—"महामात्य ! समस्या पूर्ति करना धर्मगुरुओं का काम नहीं, यह तो कवियों का काम है, आप नीतिज्ञ होकर भी यह बात कैसे भूल गए ?"

मंत्री ने अपनी भूल पर सिर झुका लिया। राजा क्षुल्लक मुनि के अद्भुत तेज पर विस्मित था। मुनि की स्पष्ट एवं निर्भीक उक्ति पर सभा में सन्नाटा छा गया। ऐसा लगा, जैसे यह छोटी-सी लाल मिर्च है, पर है बड़ी ही तेज और तीखी !

"हाँ महाराज ! आपका उपालंभ उचित है। किन्तु, फिर भी आज की यह सभा आपसे कुछ सुनने की आतुर है।" राजा और मंत्री ने एक साथ विनम्र आग्रह किया।

क्षुल्लक मुनि ने कहा— "अच्छा तो, लो मैं सुनाता हूँ—मुनि के मधुर कंठ से, श्लोक गूँज उठा—

"खंतस्स दंतस्स जिइंदियस्स,
अज्झप्पजोगे गयमाणसस्स।
किं मज्झ एएण विचिंतिएणं ?
सकुण्डलं वा वयणं न वेत्ति ॥"

—"क्षमा मेरे हृदय में बस गई है। मन मेरा काबू में है। इन्द्रियों को मैंने जीत लिया है। अपने आत्म-चिन्तन में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सदा लीन रहता हूँ। फिर मुझे इस विचार से क्या मतलब कि किसी का मुख कुण्डल सहित है, कि नहीं ?"

श्लोक सुनते ही राजा के मुँह से वाह-वाह निकल पड़ी। राजा ने सिंहासन से उठकर मुनि को नमस्कार किया और कहा—"महाराज ! मेरी घोषणा के अनुसार आप राजगुरु के सम्मान से विभूषित हो चुके हैं। आइए, पधारिए। सिंहासन पर बैठिए और उपदेश दीजिए।"

मुनि ने कहा—"राजन् ! साधु का सिंहासन तो उसका अपना मन ही है।" फिर क्षुल्लक मुनि ने मिट्टी के दो छोटे गोले—एक गीला और एक सूखा, जो कि उसके पात्र में ही रखे थे, लेकर सामने की दीवार पर फेंके और बिना कुछ बोले ही चल दिए ?"

राजा ने कहा— "महाराज, धर्म का तत्त्व तो कुछ बतलाइए। ऐसे ही कैसे चल दिए ?"

"राजन् मैंने तो धर्म का सार बता दिया, तुम नहीं समझे ?" मुनि ने दीवार पर लगे दोनों गोलों की ओर संकेत किया।

"महाराज ! जरा स्पष्ट कीजिए ! हम समझे नहीं।" मुनि ने कहा—

"उल्लो सुक्को य दो छूढा, गोलया मट्टियामया।
दोवि आवडिया कुड्डे, जो उल्लो सोत्थ लग्गइ॥
एवं लग्गंति दुम्मेहा, जे नरा कामलालसा।
विरत्ता उ न लग्गंति, जहा से सुक्कगोलए॥"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

—"राजन् ! मैंने दो गोले इस दीवार पर चिपकाये, एक गीला और दूसरा सूखा। गीला गोला दीवार से चिपक कर लगा रहा और सूखा गोला टकराकर नीचे गिर पड़ा। इसी प्रकार मनोवृत्तियों में जब तक राग-द्वेष का गीलापन रहता है, आसक्ति रहती है, तब तक कर्मरूपी गोले आत्मा-रूप दीवार पर लगते ही रहते हैं और मन की मलिनता बढ़ती ही जाती है। किन्तु, जो विरक्त और अनासक्त हैं, उनकी आत्मा पर कर्म-मलरूप गोले नहीं लगते। यही धर्म का सार है।"

धर्म का सार सुनकर राजा ने श्रद्धावनत होकर मुनि के चरणों में नमस्कार किया।

—आचारांग निर्युक्ति २२७-२३३
—आचारांग चूर्णि १/४(१
—आख्यानक मणिकोष २८/६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक क्षत्रिय कुलपुत्र के भाई की हत्या करके हत्यारा लापता हो गया। भाई की मृत्यु पर कुलपुत्र का कलेजा टूक-टूक हो गया। आँखें बरसने लग गईं। सिर पकड़ कर वह शोकमग्न मुद्रा में शून्य आकाश की ओर पागल की तरह ताकने लगा, इधर-उधर देखने लगा।

तभी वीर क्षत्रियाणी का सुप्त क्षत्रियत्व जगा। बूढ़ी माँ ने शोकाकुल पुत्र को ललकारा— "सिर पीटना, रोना और शोक करना, कायरों का काम है। क्षत्रिय वह होता है, जो अपने शत्रु से बदला ले। बेटा ! तूने मेरा दूध पिया है, क्षत्रिय का रक्त तेरी नसों में दौड़ रहा है। उठ ! अपने हाथ में खडग सँभाल, और भाई के हत्यारे के खून से उसकी प्यास बुझा।"

कुलपुत्र की शोक से रोती आँखें क्रोध से लाल अंगारे की तरह दहक उठीं। वीरता के दर्प से भुजाएँ फड़कने लगीं। उसने म्यान से तलवार बाहर खींच ली और उसे हवा में नचाने लगा।

क्षत्रियाणी माता ने उसके पौरुष को और अधिक उद्दीप्त किया-"बेटा ! सच्चा क्षत्रिय तो वह है, जो शत्रु को आक्रमण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने का हौसला ही न होने दे। वह तो हमला होने से पहले ही उस पर शेर की तरह झपट पड़े। और, शत्रु के आक्रमण करने पर भी जो शत्रु का सामना न कर सके, उसे पकड़कर शिक्षा न दे सके, वह क्षत्रिय नहीं, कायर होता है।"

क्षत्रिय, और उस पर कायर होने का लांछन ! कुलपुत्र का खून उबल पड़ा। उसके अन्दर का सुप्त क्षत्रियत्व गर्ज उठा। माँ के चरण छुए, शपथ ली कि—"माँ, अब तो बन्धु-घातक को पकड़कर ही दम लूँगा। तुम्हारे सामने लाकर उसका सिर इसी तलवार से उड़ा दूँ, तब समझना कि मैंने असली क्षत्रियाणी माँ का दूध पिया है।" माँ ने पुत्र की पीठ थपथपाई। कुलपुत्र हत्यारे की खोज में निकल पड़ा।

गाँव, नगर, जंगल और पहाड़ों में कुलपुत्र हाथ में नंगी तलवार चमकाता हुआ घूमने लगा। उसके रौद्र रूप को देख कर खूँखार शेर भी सहम गए। बड़े-बड़े वीरों के कलेजे भी धक-से रह गए। एक तरह से धरती का चप्पा - चप्पा खोज डाला, किन्तु हत्यारा नहीं मिला, सो नहीं मिला।

कुलपुत्र को घूमते-घूमते बारह वर्ष बीत गए। क्रोध का नशा फिर भी नहीं उतरा। उसे न खाने की सुध थी, न पीने की। जब तक भाई के हत्यारे को पकड़ न ले, उसे चैन कहाँ? आखिर एक दिन शत्रु उसकी नजर में चढ़ ही गया। बाज जैसे चिड़िया पर झपटता है, बिल्ली जैसे चूहे को दबोच लेती है, कुलपुत्र पूरे बल से हत्यारे पर टूट पड़ा, और पकड़ कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाश में बाँध लिया। शत्रु को बन्दी बनाकर माँ के सामने ला पटका—"माँ, यह लो मेरी तलवार और अपने पुत्र का बदला लो।" कुलपुत्र ने तलवार माँ की ओर बढ़ा दी।

माँ ने गर्व से चमकती आँखों से पुत्र की ओर देखा और कहा—"बेटा ! अपने भाई का बदला तू ही ले।" कुल-पुत्र की तलवार चमचमा उठी।

हत्यारा बलि के बकरे की तरह थर - थर काँप रहा था। कुलपुत्र के चरणों में बार-बार गिर कर मेमने की तरह मिमिया रहा था, आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। गिड़-गिड़ाकर प्राणों की भीख मांगने लगा— "मुझे जीवित छोड़ दो, जीवन भर तुम्हारा दास बना रहूँगा। मेरे बिना मेरी बूढ़ी माँ, युवा पत्नी और नन्हे-नन्हे बच्चे असहाय हो जाएँगे, बिलख -बिलख कर मर जाएँगे। क्षमा कर दो कुल-पुत्र ! मुझे प्राणों की भीख दे दो।"

कुलपुत्र का क्रोधान्ध हृदय हत्यारे की दीन - दशा को महज नाटक समझ रहा था। उसने गिड़- गिड़ाते शत्रु को एक ठोकर मारी—"दुष्ट, अब माँ और बच्चों की फिक्र लगी है।" किन्तु, सामने खड़ी माँ, यह देख रही थी, उसका मातृत्व जाग उठा—"उसकी बूढ़ी माँ ऐसे ही तड़पेगी, जैसे कि मैं अपने पुत्र के लिए तड़पती हूँ। इसके बच्चे फिर अपने पितृ घातक शत्रु से बदला लेने के लिए ऐसे ही निकलेंगे, जैसे मेरा पुत्र निकला है। एक - दूसरे के प्राणों के ग्राहक बने फिरते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहेंगे । वैर की परम्परा कितनी पीढ़ियों तक चलती जाएगी । कितनी माताओं की गोद सूनी होती रहेंगी ? कितनी सुहागिनों का सुहाग लुटता रहेगा ? वैर का बदला वैर से नहीं लिया जा सकता । 'हत्या का बदला हत्या'—यह क्रम तो कभी समाप्त ही न हो सकेगा । वैर का सच्चा समाधान तो क्षमा ही हो सकता है ।"

मातृत्व के प्रबुद्ध संस्कारों ने क्षत्रियाणी के हृदय को जीत लिया । उसने हाथ ऊँचा उठाया—"बेटा, रुक आओ ! तलवार वापस म्यान में करो । घर पर आया हुआ शत्रु अवध्य होता है । फिर यह तो शरण माँग रहा है, प्राणों की भीख माँग रहा है । शरणागत को मारना, क्षत्रिय का धर्म नहीं है । अतः इसे छोड़ दो !"

माँ की बात सुनकर कुलपुत्र सहसा भौंचक रह गया । "माँ, क्या कह रही हो ? जिस हत्यारे को पकड़ने के लिए बारह-बारह वर्ष तक जंगलों की खाक छानता रहा, तब कहीं बड़ी कठिनता से वह हाथ में आया । और, इस प्रकार आज उसके बदला लेने का अवसर आया, तब तुम कहती हो—'छोड़ दो ।' नहीं, माँ ! नहीं ! यह नहीं हो सकता । हर्गिज नहीं हो सकता । मेरे मन की आग तब तक शान्त नहीं होगी, जब तक कि मैं इसका खून नहीं पी जाऊँ, मुझे रोको मत ।"

"बेटा ! क्रोध, कभी क्रोध से शान्त हुआ है ? खून से खून के दाग धूले हैं कभी ? क्रोध को सफल करना वीरता नहीं है । वीरता है—शत्रु को क्षमा करना, क्रोध को पी जाना ।।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुलपुत्र की तलवार नीचे झुक गई। वह विचार-मग्न हो गया— "माँ ठीक तो कह रही है। क्रोध तो राक्षस है, यह सफल हुआ तो विनाश - लीला के अतिरिक्त और क्या करेगा ? बाहर के निरीह शत्रु को मारने से क्या ? इस अन्दर के राक्षस को ही मारना चाहिए।" कुलपुत्र का सद्विवेक जगा, तो क्रोध शान्त हो गया। जो तलवार हत्यारे का खून पीने के लिए लपलपा रही थी, उसी तलवार से उसके बंधन काटकर उसे मुक्त कर दिया। हत्यारा कुलपुत्र के चरणों से लिपट गया। कुलपुत्र ने उसे भाई की तरह स्नेह से उठा-लिया और प्रेमपूर्वक एक ही थाली में अपने साथ खिला-पिलाकर विदा किया।

— उत्तराध्ययन, अध्य० १ (कमलसंयमी टीका)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैशाली की राज्य-परम्परा में 'चन्द्रावतंस' एक पराक्रमी राजा हो गया है। वह कर्मवीर ही नहीं, धर्मवीर भी था। राज्य-कार्यों में संलग्न रहते हुए भी अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा को उपवास करता, पौषधव्रत करता और कायोत्सर्ग मुद्रा में दण्डायमान खड़ा होकर सुदीर्घ ध्यान - साधना भी करता रहता। जल में कमल की तरह उसका जीवन संसार में रहते हुए भी निर्लिप्त था, निर्विकार था।

एक दिन अमावस्या की अन्धकाराच्छन्न रात्रि में राजा 'चन्द्रावतंस' राज-महल में ध्यान - मुद्रा लगाये खड़ा था। अंधकार में महाराजा की साधना में कोई विघ्न न हो, इसके लिए दासी ने आ कर दीपक जला दिया, चारों ओर प्रकाश फैल गया।

'चन्द्रावतंस' की दृष्टि दीपक की लौ पर टिक गई। उधर बाहर में भौतिक दीप की प्रकाश-रश्मियाँ जगर-मगर हो रही थीं, तो इधर अन्दर में ध्यान-दीप को आध्यात्मिक प्रकाश-रश्मियाँ जगमगाने लगीं। भाव धारा आगे, और आगे बढ़ने लगी। राजा ने मन में अभिग्रह रूप संकल्प किया—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"जब तक यह दीपक जलता रहेगा, मैं अपना ध्यान चालू रखूँगा।"

दो घड़ी बीत गई, चार घड़ी गुजर गई। दीपक टिमटिमाने लगा, बुझने की स्थिति में आया। स्वामी-भक्त दासी ने देखा, तो सोचा कि दीपक गुल न हो जाए, महाराज ध्यान किए खड़े हैं? वह आई, और तेल डाल गई। लौ फिर तेज हो उठी। महाराज के अन्तस् में भी ध्यान की लौ तीव्र हो गई। बाहर के दीपक के साथ-साथ राजा के मन का अन्तर्-दीपक भी जलता रहा, प्रकाश तीव्र से तीव्रतर होता रहा।

एक प्रहर रात्रि बीत गई। दासी ने सोचा— "आज महाराज का ध्यान बहुत लम्बा चल रहा है, अतः कहीं अँधेरा न हो जाए!" दीपक का तेल समाप्त होने से पहले ही उसने पुनः तेल डाल दिया।

राजा का ध्यान लम्बा होता चला गया। दासी की स्वामी-भक्ति पर राजा प्रसन्न था कि "यह आज सच्ची भक्ति कर रही है। मेरे ध्यान की अखण्ड लौ को बुझने नहीं देना चाहती, धन्य है इसकी स्वामि-भक्ति को।"

रात बीतती गई, दीपक जलता रहा। जब-जब दीपक टिमटिमाने लगता, दासी हाथ में तेल-पात्र लिए तैयार रहती, दीपक में तेल उंडेल देती। यों रात भर तेल डलता रहा, दीपक जलता रहा। राजा की अन्तश्चेतना प्रबुद्ध हो गई। आत्मा का अखण्ड नन्दादीप भी जलता रहा। राजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान में लीन होकर उच्च-उच्चतर भाव - श्रेणी में चढ़ता गया। ज्ञान-चेतना का दिव्य प्रकाश जगमगाता रहा।

दोनों ओर संकल्प की होड़ लगी थी। दासी ने जँभाइयाँ लेते हुए भी बाहर का दीपक बुझने नहीं दिया। राजा का सुकुमार शरीर खड़े-खड़े अकड़ गया था, रोम-रोम दुखने लग गया था, पर उसके ध्यान का तार टूटने न पाया। भीतर का दीपक जो जला, तो फिर बुझा ही नहीं।

प्रातःकाल का स्वर्णिम प्रकाश धरती पर बिखरा। दासी ने दीपक को गुल किया। पर, राजा का अन्तर्-दीपक एक बार जो जल उठा, वह कैसे गुल होता ? वह तो जलता ही रहा। खड़े-खड़े पाँव सूज गए, रक्त-संचार क्षीण होने से शरीर शून्य हो गया और अन्ततः ध्यान में तल्लीन राजा की देह भूमि पर मूर्छित होकर गिर पड़ी। मृत्यु - क्षण की मूर्छा में भी उसका अन्तर्-दीप नहीं बुझा, सो नहीं बुझा। शरीर छूट गया, पर वह अखण्ड ज्योति तो जलती ही रही। वह दीप, जो एक बार जला था, जलता ही रहा।

—मरणसमाधि प्रकीर्णक

—आख्यानक मणि कोश (आम्रदेव सूरि) ४१/१२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"गुरुदेव ! मैंने संयम-व्रत तो स्वीकार कर लिया है, किन्तु कर्मोदय के कारण भूख सहन करने की शक्ति मुझ में नहीं है, एक उपवास भी नहीं कर सकता। प्रभो ! बिना तपः साधना के कैसे मेरा कल्याण होगा ?" विशाला नगरी का एक नवदीक्षित राजकुमार गुरु-चरणों में आकर प्रार्थना करने लगा।

गुरु ने शिष्य को आश्वस्त करते हुए कहा— "वत्स ! तुम भूख नहीं सह सकते, तो कोई बात नहीं। तपस्या के अन्य रूप भी हैं, मात्र अनशन-तप के रूप में भूखा रहना ही एक मात्र तप नहीं है। संतोष, सेवा, स्वाध्याय, ध्यान, क्षमा—ये भी तप हैं। तुम और कुछ नहीं, तो एक क्षमा की ही परिपूर्ण साधना करो, उसी साधना से तुम अन्य सब तपस्याओं का फल प्राप्त कर सकते हो।"

गुरु के आदेश के अनुसार मुनि क्षमा की साधना में जुट गया। क्रोध एवं द्वेष के प्रत्येक प्रसंग पर अपने को संभाल कर चलने लगा। और, इस प्रकार क्षमा का अभ्यास करते - करते उसकी उग्र रजोगुणी मनोवृत्ति अत्यन्त शान्त एवं शीतल हो गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूख उसे बहुत लगती थी। भूख के कारण रात निकालनी भी उसको मुश्किल हो जाती। प्रातः सूर्योदय होते ही एक गडुक (प्राचीन काल का एक माप) भर कूर (भात) ला कर, जब पेट में डाल लेता, तभी कुछ शान्ति मिलती। मुनि के इस नित्य प्रति के भोजन व्यवहार से लोगों ने उन्हें परिहास में 'कूर गडुक' नाम से पुकारना शुरू कर दिया।

एक बार आचार्य का संघ चम्पा नगरी में पहुंचा। उस समय धर्म - संघ में चार बहुत बड़े तपस्वी थे। पहले तपस्वी मुनि एक-एक मास का तप करते थे। दूसरे दो - दो मास का, तीसरे तीन-तीन मास का और चौथे चार - चार मास का दीर्घ तपश्चरण करते थे। ये तपस्वी 'कूर गडुक' के प्रातः होते ही नित्य प्रति भोजन करने के व्यवहार पर उपहास करते रहते। कहते—'कैसा भोजन भट्ट है ? अष्टमी-चतुर्दशी को उपवास तो क्या, एक पौरुषी (प्रहर) तक भी भूख नहीं सह सकता ? वे मुनि कूर-गडुक को 'नित्य भोजी' कहकर व्यंग्य कसते रहते थे।' किन्तु, कूर - गडुक मुनि कटु वचन एवं व्यंग्य सुनकर भी क्रुद्ध नहीं होता था। वह स्वयं को अन्दर-ही-अन्दर टटोलने लगता— "वास्तव में ये मुनि ठीक ही कह रहे हैं। मैं तप करने में बहुत ही कमजोर हूँ। धन्य है इन्हें, जो मास - क्षपण आदि की इतनी कठोर दीर्घ तपः साधना निरन्तर करते रहते हैं।"

एक बार शासनदेवी ने अनेक तपस्वी एवं विद्वान संतों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की मंडली में एक किनारे बैठे क्रूर - गडुक मुनि को आदर एवं भक्ति पूर्वक नमस्कार किया। शासनदेवी का यह व्यवहार तपस्वी मुनियों को अखर गया। उन्होंने कहा—"देवानुप्रिये ! तुम देवी होकर भी भ्रम में पड़ गई हो, जो कि घोर एवं दीर्घ तपस्वियों को छोड़कर उस नित्य-भोजी क्रूर-गडुक को वन्दना कर रही हो ?"

शासन देवी ने कहा— "भन्ते ! मैं भ्रम में नहीं हूँ। मैंने घोर तपस्वी को ही वन्दना की है। क्रूर - गडुक मुनि भाव तपस्वी है, क्षमा तप की दीर्घ आराधना से उसकी आत्मा परम पवित्र एवं निर्मल हो चुकी है। देखना, आज से सातवें दिन वह केवलज्ञान की महान् सिद्धि कैसे प्राप्त करता है ?"

तपस्वी मुनि देवी की बात पर चकित रह गए। किन्तु फिर भी उन्हें विश्वास नहीं हुआ कि "नित्य भोजन करने वाले की आत्मा हमारे से अधिक पवित्र कैसे हो सकती है?"

क्रूर-गडुक देवी के भक्ति-भाव पूर्वक वन्दन और प्रशंसा करने पर भी उतना ही शान्त और अनपेक्ष रहा, जितना कि 'नित्य भोजी' और 'भोजनभट्ट' कह कर उपहास करनेवालों के प्रति रह रहा था।

आज सातवें दिन पर्व - दिन था, प्रायः सभी छोटे-बड़े मुनिजनों को उपवास था। किन्तु क्रूर-गडुक आज भी अपनी असह्य क्षुधा वेदनीय के कारण उपवास नहीं कर सका। गुरु की आज्ञा लेकर भिक्षा के लिए गया। भिक्षा में जो कुछ शुद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्दोष भोजन प्राप्त हुआ, वह लेकर गुरु के पास लौटकर आया, तो शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार उपस्थित मुनिवरों के समक्ष भोजन - पात्र रखकर सादर निमंत्रित करने लगा—"भन्ते ! आपको इसमें जो भी आवश्यकता हो, ग्रहण करके मुझे अनुगृहीत कीजिए—"साहू हुज्जामि तारिओ।"

क्रूरगडुक के सहज एवं सरल निवेदन पर एक तपस्वी मुनि को क्रोध चढ़ आया। उबल पड़ा— "धीठ कहीं का ! आज पर्व दिन पर भी उपवास नहीं कर सका, और उलटा भोजन लाकर हमें दिखा रहा है। 'थू, थू' चला जा यहाँ से। पतित कहीं का.....?"

तपस्वी ने क्रोध व घृणावश ज्यों ही थू - थू किया कि वास्तव में ही उसके मुँह से थूक उछलकर क्रूरगडुक के भोजन-पात्र में जा गिरा। पर, क्रूरगडुक के चेहरे पर एक भी सलवट नहीं आई। अब भी वह पहली-सी अखण्ड शान्ति और सौम्यता थी उसके मुख - कमल पर। वह क्रुद्ध तपस्वी मुनि के चरणस्पर्श कर एकान्त में जाकर भोजन करने बैठा। भोजन करते-करते सोचने लगा—"वास्तव में ही मैं कितना पतित हूँ, धृष्ट हूँ ? इतनी लंबी जिन्दगी में एक भी उपवास नहीं कर सका। साधना - पथ पर आकर भी नित्य भोजन करता हूं। धिक्कार है मुझे ! उन तपस्वियों को धन्य है, जो दीर्घ तपस्याएँ करके आत्म-साधना में आगे बढ़ रहे हैं, जीवन संग्राम में वीर योद्धा की तरह जूझ रहे हैं। मैं कायर हूँ, मुझ से तो कुछ भी नहीं हो रहा है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचारों की इस उच्च भूमि पर चढ़ता हुआ कूरगडुक मुनि धर्मध्यान से शुक्ल - ध्यान में अग्रसर हो गया, वह आत्म - दर्शन करने लगा। उसके क्रोध और अहंकार आदि कषायभाव क्षीण हो गए, आसक्ति के बन्धन टूट गए। आत्मा में परम शान्ति और शीतलता की वे निर्मल भाव लहरें उठीं कि केवलज्ञान के दिव्य प्रकाश से लोकालोक आलोकित हो उठा। आकाश में देव-दुन्दुभियाँ बजने लगीं। कूरगडुक केवली की जय - जयकार करते हुए देवताओं के अनेकानेक वृन्द धरती पर उतर आए और कूरगडुक मुनि के चरण-कमलों में नमस्कार करने लगे।

बड़े - बड़े तपस्वी, जिन्हें अपने तप का अहंकार था, कूरगडुक मुनि को केवली हुआ देखकर चकित हो उठे। वे श्रद्धावनत उसके पास आकर अपने कटु वचन, अपमान एवं अभद्र व्यवहार के लिए बार - बार क्षमा माँगने लगे। उन्हें अब समझते देर नहीं लगी कि वास्तव में तप क्या है? सच्चा तप बाहर में नहीं, अन्दर में है। और वह है—क्रोध-विजय में, क्षमाशीलता में, सहिष्णुता में।

—उपदेशप्रसाद स्तंभ ३/४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'क्षुल्लक कुमार' एक राजकुमार था। संस्कार - वश बाल्य-काल में ही वह अपनी माता साध्वी यशोभद्रा के पास दीक्षा लेकर ज्ञानार्जन में जुट गया। जब वह युवक हुआ, तो हृदय में संसार के सुखोपभोग की तरंग उठ खड़ी हुई। दबाने पर भी यह तरंग जब दब न सकी, तब एक दिन वह अपनी माँ से, मुनिवेश छोड़ कर पुनः संसार में जाने की अनुमति माँगने लगा।

माँ ने बहुत समझाया, पर पुत्र का मन नहीं बदला। आखिर मोह का दबाव डालकर माँ ने कहा—"पुत्र ! कम-से-कम बारह वर्ष तक तू मेरे पास और रहकर अध्ययन कर ले। फिर जैसा तेरा मन हो, वैसा करना।"

माँ की ममता ने पुत्र को बारह वर्ष के लिए और बाँध लिया। प्रतिदिन वैराग्य और ज्ञान की बातें सुनते हुए भी उसके भोगाकुल मन पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। किसी तरह बारह वर्ष पूरे हुए, उसने माता से पुनः घर जाने की अनुमति माँगी।

स्नेह के कारण माँ की आँखें भींग गईं। उसने कहा—"पुत्र ! मेरी गुरुनी (महत्तरा आर्यिका) के पास जाकर तुम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज्ञा लो। यदि वे आज्ञा दे दें, तो तुम....।" क्षुल्लक कुमार गुरुनी के पास आया और घर जाने की आज्ञा माँगी।

गुरुनी ने कहा—"पुत्र, पहले बारह वर्ष तक मेरे पास रहकर धर्म - उपदेश सुनो, उसके बाद देखा जाएगा।"

क्षुल्लक गुरुनी की बात को भी न टाल सका। विकारों की उछाल मन से मिटी नहीं थी, पर किसी-न-किसी तरह उसे दबाकर वह बारह वर्ष तक गुरुनी की देख-रेख में अध्ययन करता रहा। बारह वर्ष पूरा होते ही उसने गुरुनी से विदा माँगी। गुरुनी ने कहा—"पुत्र ! तू जा सकता है, किंतु अपने उपाध्याय की आज्ञा ले कर।"

क्षुल्लक उपाध्याय के पास गया, तो उपाध्याय ने भी बारह वर्ष के लिए रोक लिया। मन को मसोस कर क्षुल्लक ने फिर बारह वर्ष बिताए। बारह वर्ष पूरे होने पर उसने उपाध्याय से संसार में जाने की अनुमति माँगी। उपाध्याय ने कहा—"क्षुल्लक ! आचार्य की अनुमति लिए बिना संसार में मत जाओ !"

क्षुल्लक आचार्य के पास आया। आचार्य ने भी उसे बारह वर्ष तक धर्म सुनने के लिए रोक लिया। क्षुल्लक मन-ही-मन खीझ उठा—"इतने वर्ष बीत गए, धर्म सुनते - सुनते, अब और क्या बाकी रह गया है ?" किन्तु फिर भी वह लज्जावश आचार्य की बात टाल नहीं सका।

क्षुल्लक ने अड़तालीस वर्ष तक अपने मन की इच्छा और भावना को दबाया। अब मानसिक चंचलता असह्य हो रही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी, वह संसार में जाकर सांसारिक सुखों का अनुभव करने के लिए तड़प रहा था। इस बार बारह वर्ष पूरे होते ही उसने आचार्य की अनुमति की प्रतीक्षा नहीं की, समय पूरा होते ही वह चुपचाप संसार की स्वतन्त्र यात्रा के लिए चल पड़ा।

क्षुल्लक मुनि चलता-चलता साकेतपुर पहुंचा। नगर में आते-आते संध्या हो गई थी। नगर के बाहर उद्यान में एक सुन्दर नाटक हो रहा था। सहस्रों मनुष्य तन्मयता के साथ खड़े-खड़े नाटक देख रहे दे। नृत्य और गायन का अद्भुत समा बंधा था। क्षुल्लक मुनि के पाँव वहीं रुक गए। वह भी एक ओर खड़ा होकर नृत्य देखने में लीन हो गया।

आकाश में निर्मल शुभ्र चाँदनी खिल रही थी। शीतल और मन्द पवन बह रही थी। नर्तकी के मधुर-स्वर पायल की झनकारों के साथ दिग्-दिगन्त को मुखरित कर रहे थे। उसके अंगों की लचक, कटाक्षों का उन्माद दर्शकों को अपनी मादकता के वेगवान प्रवाह में बहाये ले जा रहा था। रात के तीन पहर बीतने को आए, पर लोगों को आँखों पर जैसे जादू छाया हुआ था, किसी को पता भी नहीं चला कि इतना लम्बा समय कब और कैसे बीत गया?

अनवरत नृत्य करते-करते नर्तकी का अंग-प्रत्यंग श्रम से शिथिल हो गया। उसकी आँखें भारी और लाल हो गईं। नींद की हलकी - सी झपकी जैसे आँखों पर उतरने लगी। नृत्य-मंडली की बूढ़ी आका (मुखिया नर्तकी) ने देखा—अरे!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह क्या, खेती पकने के समय किसान सो रहा है ? नृत्य का पारिश्रमिक मिलने का समय आया, तो नर्तकी शिथिल होकर झपकियाँ लेने लग रही है। स्वर लड़खड़ाने लग गए हैं। उसने गीत का आलाप भरते हुए नर्तकी को सावधान किया—

"सुट्ठु गाइयं, सुट्ठु वाइयं, सुट्ठु नच्चियं सामसुन्दरी !
अणुपालिय दीहराइयं, उसुमिणं ते मा पमायए !"

"सुन्दरी ! तूने लम्बे समय तक सुन्दर गाया, सुन्दर बजाया, और सुन्दर नृत्य किया। अब थोड़े से समय के लिए प्रमाद न कर ! यही तो फल मिलने का समय है।"

क्षुल्लक मुनि एक किनारे खड़ा अभिनय देख रहा था। ज्योंही यह गाथा सुनी, सहसा उसकी तन्मयता टूट गई। उसे एक झटका - सा लगा। गाथा के अर्थ पर चिन्तन करने लगा, तो उसकी अन्तर्-निद्रा खुल गई। तुरन्त, उसने अपने कंधे पर का रत्न कम्बल वृद्ध नर्तकी को दे डाला।

उधर राजकुमार ने यह गाथा सुनते ही अपने मणि-जटित कुण्डल उतार कर नर्तकी की झोली में डाल दिए।

तभी एक ओर खड़ी कोई कुल - वधू अपने गले का रत्नहार उतार कर नर्तकी के हाथ में थमा गई।

इधर राज - मंत्री ने भी उसी क्षण अपनी हीरे की अँगूठी निकाली और नर्तकी के सामने रख दी।

मुनि, राजकुमार, कुल-वधू और मंत्री को एक गाथा पर इस प्रकार धन बरसाते देखकर वृद्ध राजा को बड़ा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आश्चर्य हुआ। उसने सर्व - प्रथम क्षुल्लक मुनि की ओर व्यंग-भरी दृष्टि डाली— "मुनिवर ! नृत्य - गीत पर इतने मुग्ध हुए कि एक लाख मुद्राओं का रत्न कम्बल नर्तकी को पुरस्कार (तुष्टि दान) में दे डाला ?"

"राजन् ! नर्तकी की इस गाथा से जो प्रतिबोध मिला है, उसकी तुलना में यह रत्न कंबल कुछ भी नहीं।"

"हाँ, ऐसा ! क्या बोध मिला, जरा सुनें तो सही ?" राजा ने एक तीखे हास्य के साथ मुनि के मुख को ओर देखा!

मुनि ने कहा—"राजन् ! मैं भी एक राजकुमार हूँ ! दीर्घकाल तक संयम की कठोर साधना करता रहा, किन्तु मन विषय-भोगों की ओर दौड़ता ही रहा, रोकनेपर भी वह नहीं रुका, तो गृहस्थ - आश्रम की ओर चल पड़ा। साधु के व्रत और नियमों का परित्याग कर मैं घर की ओर जा ही रहा था कि मार्ग में आपके इस नृत्य में मन उलझ गया। रात भर खड़ा - खड़ा यह नृत्य देखता रहा। अभी जब उस बूढ़ी नर्तकी ने यह गाथा सुनाई, तो ऐसा लगा, जैसे किसी ने नींद में सोये मुझको झकझोर दिया हो। उसका यह पद—

"अणुपालिय दीहराइयं, उसुमिणं ते मा पमायए !"

"दीर्घकाल तक जिस पथ का अनुसरण किया, अब थोड़े-से के लिए उसे छोड़कर प्रमत्त न बन"—मुझे जगा गया। माँ, गुरुनी, उपाध्याय और आचार्य के अड़तालीस वर्ष के निरन्तर सहवास और उपदेश से जो मन नहीं जगा, वह सहसा ही इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा की नोंक से गुदगुदा कर जग उठा। नर्तकी ने मुझ पर वह उपकार किया है कि बस, मेरा साधक जीवन पतित होते - होते बच गया। इसी प्रसन्नता में मैंने यह रत्न-कम्बल नर्तकी को दे डाला।"

क्षुल्लक मुनि की बात सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने राजकुमार से पूछा— "तुमने किस बात पर प्रसन्न होकर—अपना मणि-जटित कुण्डल दिया बेटा ?"

राजकुमार ने सिर झुकाया— "पिताजी ! दुष्टता क्षमा हो ! राय - लोभ के कारण मैं विष आदि के प्रयोग से आपको घात करके राजा बनने की धुन में था। नर्तकी ने मेरे मन के चोर को पकड़ लिया। मैंने सोचा—जीवन भर जिस पिता की सेवा की, अब बुढ़ापे में उसे यों मार डालना ठीक नहीं है। अब तो पिताजी बूढ़े हो गए हैं, थोड़े दिनों के और मेहमान हैं। इस थोड़े-से के लिए इतना बड़ा कलंक का टीका सिर पर क्यों लगाऊँ ? इस विचार ने मेरे मन के पाप को धो डाला, प्रत्युपकार स्वरूप नर्तकी को मैंने अपने रत्नजटित कुण्डल उतार कर दे दिए।"

राजकुमार की बात सुनी तो राजा का हृदय आश्चर्य-मिश्रित प्रसन्नता से तरंगित हो उठा। एक ओर खड़ी कुल-वधू से राजा ने पूछा—"पुत्री ! तुमने किस बात पर अपना अमूल्य रत्नहार दे डाला ?"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लज्जावश कुल-वधू की आँखें नीचे झुक गईं—"महाराज ! क्या कहूँ, बारह वर्ष से परदेश गए पति के विरह में आकुल हुई तड़प रही हूँ। अब तक धैर्य के साथ किसी तरह अपने कुल-धर्म का पालन किया। पर, आज इस रागरंग के मादक वातावरण में मेरे धैर्य का बांध टूट ही गया और मैं अपने कुल-धर्म की मर्यादा तोड़ने पर उतारू हो गई। किन्तु नर्तकी की गाथा ने मेरे गिरते हुए मनोबल को सहारा दे दिया, मैं पतित होने से बच गई। बारह वर्ष तक जब इंतजार की, तो अब थोड़े दिन और रहे हैं, पति की राह देखनी चाहिए। क्षणिक भावावेश के करण यों कुल कलंकित क्यों करूँ ?"— इस प्रकार मैंने नर्तकी का उपकार माना और उसके प्रतिदान में यह हार दे दिया।

कुल-वधू की बात पूरी हुई तो राजा ने मंत्री की ओर सहास्य देखा— "मंत्रीवर ! आपने किस बातपर प्रसन्न होकर हीरे की अंगूठी नर्तकी को दे दी !"

मंत्री ने हाथ जोड़कर कहा— "अपराध क्षमा हो। मैं जीवन की सान्ध्य-वेला में अपने राज-धर्म से भ्रष्ट हो रहा था। आपके सीमावर्ती शत्रु राजाओं द्वारा दिए गए प्रलोभन के कारण मैं अब आपके साथ भयंकर धोखा करने वाला था। पर, नर्तकी की गाथा सुनते ही मेरी भटकी हुई चेतना सत्पथ पर लौट आई। जीवन भर वफादारी से जिस राज-धर्म का पालन किया, अब थोड़े-से जीवन के लिए उसको त्याग देने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की मूर्खता क्यों करूँ ?—नर्तकी ने यह जो बोध दिया है, उसी के उपलक्ष्य में मैंने हीरे की अँगूठी उसे दे डाली।

रंगमंडप में शृंगार रस की जगह शान्त रस का स्रोत उमड़ पड़ा। मुनि, राजकुमार, कुल-वधू और मंत्री के उद्-बोधक प्रसंग सुनकर राजा का हृदय प्रबुद्ध हो उठा। सोचा—"अब मेरे जीवन की सान्ध्य-वेला आ चुकी है, भोगों में कब तक फँसा रहूँगा ? अब तो यह सब छोड़कर आत्म - साधना की ओर उन्मुख होना चाहिए।" राजा ने अपने पुत्र को राज-सिंहासन सौंपा और स्वयं क्षुल्लकमुनि के साथ आचार्य के चरणों में पहुंच कर प्रव्रजित हो गया।

जागृति की लहर जब उठती है, तो वह एक ही लहर अनेक हृदयों को नव-जीवन दे जाती है। एक ही दीप अनेक दीप जला देता है। दीप से दीप प्रज्वलित होते जाते हैं।

— उपदेशप्रासाद ४/१२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थावच्चा पुत्र, हाँ, बस यही नाम समझ लीजिए। वैसे इतिहासकारों को उसके असली नाम का पता नहीं है। उसकी माता का नाम थावच्चा था, और इसलिए वह माता के नाम पर थावच्चा-पुत्र के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

थावच्चा-पुत्र जन्म से ही जागृत मस्तिष्क लेकर आया था। आमतौर पर गुलाबी बचपन खेल - खिलौनों की भूल-भुलैया में भ्रमित रहता है, परन्तु थावच्चा पुत्र का बचपन कुछ विलक्षण ही था। वह जो कुछ भी देखता या सुनता, उसमें गहरा उतरता। उसका मन प्रश्नों से भर जाता और वस्तुस्थिति की तह तक पहुंचे बिना वह कभी भी चैन से नहीं बैठता।

एक बार की बात है, थावच्चा पुत्र अपने सप्तभूमि प्रासाद की सातवीं मंजिल पर खड़ा नगर की शोभा देख रहा था। प्रातःकाल का समय था। सूर्य पूर्व के क्षितिज पर ऊपर उठ आने के लिए उजली किरणों के रूप में अपने हजारों हाथ फैलाए हुए था। इधर-उधर बिखरे मेघ - खण्ड स्वर्णाभ हो रहे थे। गगनचुम्बी महलों के स्वर्ण कलश सूरज की सुनहली किरणों के स्पर्श से चमचमा रहे थे। शीतल मंद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समीर बह रही थी। अनेक तरह के रंग - बिरंगे पक्षी अपने रैन-बसेरों से पंक्तिबद्ध उड़े जा रहे थे, दूर कहीं दाना-पानी की तलाश में। अति सुखद एवं सुहावना दृश्य था। थावच्चा पुत्र आनन्द - विभोर हुआ यह सब देख रहा था। कभी इधर, तो कभी उधर, महल की छत पर दौड़ा-दौड़ा घूम रहा था।

इसी बीच पड़ौस के घर से आती मंगल गीतों की मधुर ध्वनि उसके कानों को छू गई। गीतों की मधुरता और मोहकता ने थावच्चा पुत्र को सहसा अपनी ओर खींच लिया। वह इधर - उधर देखना भूल गया और एक तान होकर श्रवण - पुटों से मानो मधुरस पीने लगा। गीतों की पृष्ठ-भूमि एवं भावना वह ठीक तरह नहीं समझ पा रहा था। पर, उसका जिज्ञासु मन एक के बाद एक उठते प्रश्नों से भरने लगा—ये गीत क्या हैं ? क्यों गाये जा रहे हैं ?

बालक का गुरु माँ होती है। थावच्चा पुत्र नीचे उतरा और जल्दी से माँ के पास आया। प्रेम से मचलते हुए माँ का आँचल खींचकर गोदी में बैठ गया— "माँ ! पड़ौस में ये सुन्दर और मीठे गीत किसलिए गाए जा रहे हैं ?"

—"बेटा ! अपनी वह पड़ौसिन है न ! उसकी गोद आज भर गई। उसके पुत्र हुआ है। पुत्र - जन्म की खुशी में ही ये गीत गाये जा रहे हैं।"

—"माँ ! क्या मेरे जन्म के समय भी ऐसे ही गीत गाये गए थे ?"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"बेटा ! तेरे जन्म की क्या बात ? तब तो बहुत गीत गाये थे, इससे भी कहीं ज्यादा ! बहुत ज्यादा ! गीत ही नहीं, बाजे भी बजे और पूरे मोहल्ले में मिठाइयाँ बटी थीं।"

"माँ ! मन करता है, गीत सुनता ही रहूँ। तुम भी चलो, ऊपर !"

"नहीं बेटा ! मुझे काम है। तुम जाओ और खूब मन भर कर गीत सुनो !"

थावच्चा पुत्र ऊपर आया, तो और ही आवाज सुनकर उसका मन रुआँ - रुआँसा होने लगा। यह क्या, बड़ा भयावना-सा कोलाहल है, रुदन है। कानों में कांटों की तरह चुभन होने लगी। वह दौड़कर माँ के पास आया। "माँ क्या हुआ ? वे गीत जो इतने मीठे थे, अब बड़े असुहाने क्यों लग रहे हैं ? गीत क्या, कोलाहल-जैसा है, रुदन है !"

माँ ने पुत्र का हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया। पड़ोसी के आकस्मिक दुःख और विलाप से उसकी आंखें भी गीली हो गईं। वह स्नेहिल हाथों से पुत्र का सिर सहलाने लगी। थावच्चा पुत्र ने माँ की आँखों में गरम - गरम आँसू छलकते देखे, तो बोल पड़ा— "अरी अम्मा ! यह क्या ? तुम रो क्यों रही हो ?" मैंने तो तुम से कुछ नहीं कहा, सिर्फ इतना ही तो पूछा— "पड़ोसी के घर पर ये गीत बदल क्यों गए ?"

बालक की सहज अबोधता पर माँ का हृदय गद्-गद् हो उठा—"बेटा, कुछ नहीं ! थोड़ी देर पहले ही पड़ोस के घर में जो पुत्र जन्म लेकर आया था, वह अब वापस हो गया ?"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"क्या मतलब माँ ? कहाँ चला गया ?"

"बेटा, वह मर गया"—माँ ने एक लम्बा सांस छोड़ा !

"माँ ! क्या मैं भी ऐसे ही मर जाऊँगा?"

"थूक बेटा, मुँह से ! ऐसी बात नहीं किया करते। मरे तेरा दुश्मन ! मेरा लाडला क्यों मरे ?"

"क्या मैं नहीं मरूंगा माँ ?"

माँ दो क्षण मौन हो गई। पुत्र के सरल सुकुमार मुखड़े पर उभरती गूढ़ जिज्ञासा - रेखाओं को देखती ही रही !

पुत्र ने फिर मचल कर पूछा—"माँ ! सच-सच बता, क्या मैं भी कभी मरूँगा ?"

माँ की आँखें छलछला आईं—"हाँ बेटा, मरना तो सभी को पड़ता है, जो जन्मता है, वह एक दिन मरता भी है।"

"माँ, क्या कोई ऐसा भी उपाय है, कि मैं मरूँ नहीं।

"बेटा ! ऐसी बातें मत कर। मेरा कलेजा मुँह को आता है—तेरी ये अटपटी बातें सुनकर।"—माँ ने उसको स्नेह ने थोड़ा-सा डाँट दिया।

थावच्चा पुत्र माँ की डाँट से एक बार चुप तो हो गया। किन्तु, उसके विचारों में एक अज्ञात कम्पन, एक गूढ़ प्रश्न सदा-सदा के लिए खड़ा हो गया। वह अकेले में बैठकर इसी विषय पर सोचता रहता— "मनुष्य मरता क्यों है ? क्या वह अमर नहीं रह सकता ? संसार में ऐसा कोई मार्ग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होना चाहिए, ऐसी कोई साधना होनी चाहिए कि मनुष्य कभी मरे नहीं। वह अमर हो जाए।"

थावच्चा पुत्र बड़ा हुआ। एक बार भगवान् अरिष्ट-नेमि द्वारिका नगरी में पधारे। थावच्चा पुत्र भी अपनी माता के साथ उपदेश सुनने को गया। प्रभु का उपदेश सुनते ही उसका हृदय प्रबुद्ध हो गया। उसकी बाल्य-काल से चली आ रही जिज्ञासा को आज पूर्ण होने का मार्ग मिल गया। मृत्यु को जीतने की साधना उसे प्राप्त हो गई। वह माता की आज्ञा लेकर भगवान् अरिष्टनेमी के चरणों में दीक्षित हो गया। साधना के कठोर मार्ग पर अविचल धैर्य के साथ बढ़ा, तो ऐसा बढ़ा कि सदा के लिए जन्म-मरण की परम्परा का नाश कर अजर-अमर बन गया। उसने मृत्यु को जीत लिया। बचपन का उठा प्रश्न सदा-सर्वदा के लिए समाधान पा गया।

—थावच्चा पुत्र-रास (मुनि श्री जीवराजजी)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दासीपुत्र होने से किसी ने उसका नामकरण भी नहीं किया। लोग सदा उसे माँ के नाम से ही पुकारते रहे—'चिलाती - पुत्र।' चिलाती राजगृह के धन्य श्रेष्ठी की एक किरात-जाति की दासी थी। धन्य श्रेष्ठी के पाँच पुत्रों पर एक पुत्री थी 'सुषुमा'। बड़े लाड़-प्यार में पल रही थी वह। चिलातीपुत्र उसे खिलाया करता था। बाहर घुमाने को ले जाता, इधर-उधर के हास-परिहास करता, मनोरंजन करता और उसे बहुत ही स्नेह करता। सुषुमा भी चिलातीपुत्र से स्नेह करने लगी। दोनों बड़े हुए। एक दिन धन्य सेठ ने चिलातीपुत्र को सुषुमा के साथ एकान्त में अश्लील व्यवहार करते देखा, तो वह आग-बबूला हो उठा। चिलातीपुत्र को मार-पीट कर घर से निकाल दिया। सेठ के इस व्यवहार से उसे बड़ा क्षोभ हुआ, वह मन - ही - मन कट के रह गया। गरीब दासी-पुत्र के भाग्य में सिवा अपमान और कष्ट के और था ही क्या ? चिलातीपुत्र ने क्षुब्ध होकर इसका बदला लेने की सोची। वह राजगृह से निकल कर 'सिंह-गुहा' नाम की एक चोर-पल्ली में पहुंच गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ ही दिनों में चिलातीपुत्र एक क्रूर दस्यु बन गया। उसका साहस और शौर्य देख कर पल्लीपति ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में चिलाती-पुत्र को पल्ली का स्वामी बना दिया। अब उसे अपना प्रतिशोध लेने का अवसर मिला। सुषुमा के रूप के प्रति चिलातीपुत्र कब से आसक्त था। उसने अपने साथियों से मंत्रणा करके योजना बनाई। और एक दिन अचानक धन्य-श्रेष्ठी के घर पर हमला बोल दिया गया।

चोरों ने धन के खूब गट्ठर बाँधे। किन्तु, चिलातीपुत्र को धन की उतनी लालसा नहीं थी, जितनी 'सुषुमा' की थी। उसने सुषुमा को अपने कब्जे में ले लिया। अन्य चोर सेठ के घर की मनचाही तबाही करते रहे, पर किसकी हिम्मत थी, जो उस क्रूर दस्यु-दल का मुकाबला करे। चोरों के चले जाने के बाद धन्य श्रेष्ठी अनेक सिपाही, नगर कोतवाल और अपने पाँचों पुत्रों को साथ में लेकर चोरों का पीछा किया। धन चले जाने की सेठ को उतनी फिक्र नहीं थी, जितनी प्राणों से प्यारी लाडली बेटी 'सुषुमा' को ले जाने की थी। सुषमा क्या गई, सेठ का कलेजा निकल गया। वह द्रुत गति से चोरों का पीछा करने लगा।

चोरों ने देखा— "सेठ नगर-रक्षक के साथ अनेक सशस्त्र राज-पुरुषों को लिए हमारा पीछा कर रहा है। वह बहुत ही खूंखार है। आज सेठ अपने आपे में नहीं है। वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साक्षात् मौत की तरह लपकता आगे बढ़ा आ रहा है। अब तो सेठ की पकड़ से बच निकलना बड़ा कठिन है। आज तो बस मरे। क्या किया जाए ?"—भागते चोरों ने परस्पर कानाफूसी की, और बस, धन के गट्ठर रास्ते में इधर-उधर फेंकने शुरू किए और जंगल में कोई सघन झाड़ियों में, तो कोई पुराने उजड़े खण्डहरों में, और कोई किसी गुफा में छिपने के लिए सिर-पर-पाँव रख कर दौड़ा।

राज-पुरुषों ने चोरों का पीछा करना छोड़ दिया और धन बटोरने में लग गए। पर धन्य सेठ ने पाँचों पुत्रों को साथ लेकर चिलातीपुत्र का पीछा किया। वह सुषुमा को पीठ पर उठाए अब भी भागा जा रहा था। कभी झाड़ियों में छुपता, तो कभी किसी गड्ढे में। पर, देखा कि धन्य सेठ विकराल हुआ उसका पीछा कर रहा है। उससे बचना असम्भव है। मालूम होता है, वह आज उसे पकड़ कर ही दम लेगा। सुषुमा का भार काफी है। उसे उठाये तेज नहीं दौड़ा जा सकता। इतना विचार आया कि चिलातीपुत्र ने अपने प्राणों के मोह में 'सुषुमा' का सिर काट डाला। राग भी द्वेष का रूप कैसे लेता है, इसका यह कितना सजीव उदाहरण है ? खून से लथपथ धड़ को तो वहीं डाला और सिर को अपने हाथ में लिए आगे को बेतहाशा भागता चला गया।

धन्य ने सुषुमा का धड़ पड़ा देखा, तो उसके हाथ-पाँव ढीले पड़ गए। वह सिर पीट कर रह गया। जिस पुत्री के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए वह दौड़ रहा था, दुष्ट चोर ने उसके सिर को काट डाला। सेठ ने मन-ही-मन दुष्ट चिलातीपुत्र पर बहुत रोष खाया, पर अब करे, तो क्या करे ? वह शोक, क्रन्दन और विलाप करता हुआ सुषुमा के धड़ को लेकर वापस घर को लौट आया। इस घटना से उसका मन बहुत उदास और खिन्न हो गया। कुछ दिनों बाद उसने विरक्त होकर दीक्षा स्वीकार कर ली।

इधर चिलातीपुत्र भयभीत मनःस्थिति में सुषुमा का कटा हुआ सिर हाथ में लिए बहुत दूर निकल गया। कटे सिर से रक्त टपक रहा था। चिलातीपुत्र का एक तरह से समूचा शरीर रक्त-रञ्जित हो गया। उसने जंगल में इधर-उधर भटकते हुए सघन वृक्ष के नीचे एक मुनि को ध्यान में खड़े देखा, तो बोला—"मुनि ! ठीक - ठीक बताओ, यहाँ क्या कर रहे हो ? क्या धर्म-कर्म है तुम्हारा ? नहीं, तो इस नारी की तरह तुम्हारा सिर भी अभी धड़ से उड़ा देता हूँ।"

मुनि ने उसके विकराल, भयंकर और क्रूर जीवन के पीछे भी धर्म-जिज्ञासा की एक हल्की - सी सौम्य रेखा उभरती देखी। उन्होंने शान्ति के साथ संक्षेप में उसे एक त्रिपदी का उपदेश दिया— 'उपशम, विवेक, संवर।' और, उसके देखते-ही- देखते पक्षी की तरह आकाश में उड़ गए।

चिलातीपुत्र आश्चर्य मूढ़ - सा बना कुछ समय तक आकाश की ओर देखता रहा। फिर सोचा— "मुनि ने यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्या धर्म बताया ? उपशम ! क्या अर्थ हुआ उपशम का ? उपशम— अर्थात् क्रोध को शान्ति ! मन की शीतलता ! ओह ! मेरे मन में तो कब से क्रोध की आग जल रही है ! एक निरपराध कुमारी के खून से सनी तलवार मेरे क्रोध का प्रचण्ड रूप लिए कितनी भयानक लग रही है ? हाथ में खून की प्यासी तलवार है, तो उपशम कैसा ?" वह उपशम के विचार में गहरा उतरा और झट से उसने तलवार फेंक दी।

"मुनि ने दूसरा धर्मसूत्र बताया है— विवेक ! बड़ा गम्भीर अर्थ है इसका ! कृत्य-अकृत्य का विवेक ! भलाई-बुराई का ज्ञान। विवेक का द्वार खुले बिना धर्म हृदय में प्रवेश ही नहीं कर सकता ! मुझ में कहाँ है विवेक ? नग्न क्रूरता का प्रतीक यह स्त्री का रक्त-प्लावित मुंड तो हाथ में लिए खड़ा हूँ। छि: कैसा विवेक ?" उसने हाथ को एक झटका दिया, और सुषुमा का वह मुंड दूर जा गिरा।

आँख मूँदे वह विचारों की गहराई में अधिकाधिक उतरता जा रहा था। विचार के ज्योतिर्मय स्फुलिंग नया प्रकाश देने लगे। अब संवर पर उसका चिन्तन टिका। "ओह, संवर ! कितना महान् वाक्य कहा है मुनि ने ! मैं स्वेच्छाचारी, असंयत ! कहाँ है संवर का विचार ? संवर अर्थात् संयम ! मन का संयम, वचन का संयम, कर्म का संयम—यही तो है संवर की साधना ! अपने आपको संयम में उतार दूँ, तभी तो धर्म उतरेगा हृदय में।" वह विचार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता–करता आत्म-लीन हो गया। मन की मोह-तन्द्रा टूट गई। उसने प्रतिज्ञा की—"जब तक स्त्री-हत्या का पाप मेरी आत्म-स्मृति को दबा रहा है, तब तक मैं यहीं कायोत्सर्ग करके खड़ा रहूँगा। न खाना, न पीना, न हिलना, न डुलना। आँख भी नहीं खोलना, पलक भी नहीं झपकाना!" कठोर संकल्प ने आत्म-शक्ति को जागृत कर दिया। क्रूरकर्मा चिलातीपुत्र, साधु बनकर प्रस्तर प्रतिमा की तरह ध्यान में लीन होकर खड़ा हो गया। चींटियों ने काटा, हिंस्र-पशुओं ने त्रास दिया, क्रूर पक्षियों ने चोंच मार-मार कर शरीर पर अनेक घाव कर दिए। पर, वह अन्तर् में अखण्ड समता लिए तीव्र-वेदनाओं के साथ जूझता रहा। मन प्रशांत था। धर्म की लौ जल रही थी। जीवन भर जो खून बहाता रहा, उसने धर्म-गंगा में एक ही डुबकी लगाई, और परम पवित्र बन कर उभरा। उसने ध्यानावस्था में ही आयुष्य पूर्ण कर आठवें स्वर्ग में देवता के रूप में अवतार लिया।[1]

—भक्त पईन्ना (प्रकीर्णक) ८८; उपदेश प्रसाद १/१०
—आख्यानक मणिकोश (आम्रदेवसूरि) १२/३७

ज्ञाता धर्मकथा सूत्र (१८) में इस कथा का उत्तरार्ध नहीं है। वहाँ चिलातीपुत्र सुषुमा का सिर लिए हुए जंगल में यों ही भूख-प्यास से व्याकुल होकर भटकता हुआ मर जाता है। लगता है, कथा-प्रवाह धीरे-धीरे परिमार्जित एवं विकसित होता गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृढ़ प्रहारी : दृढ़ आचारी १०

माकंदी नगरी में समुद्र नाम का एक सेठ रहता था। उसके दत्त नाम का पुत्र था। दत्त बड़ा ही उच्छृंखल और क्रूर प्रकृति का व्यक्ति था। बालकों के साथ जब वह खेलता, तो बात-बात में उनसे झगड़ पड़ता, लड़ पड़ता और बड़े दृढ़ प्रहार से उन्हें मारता। चूँकि वह बलवान एवं हृष्ट-पुष्ट था, इसलिए सब बच्चे उससे डरते थे। कड़ी मार (दृढ़ प्रहार) करने की आदत होने से लोग उसे दत्त न कह कर 'दृढ़-प्रहारी' कहने लग गए।

दृढ़-प्रहारी बड़ा हुआ, तो उसकी उच्छृंखलता पड़ौसी और मुहल्ले वालों के लिए भी सिर-दर्द बन गई। वह अपने अहं में इतना डूबा रहता कि किसी की कुछ भी नहीं सुनता था। लोगों ने राजा से शिकायत की। राजा ने उसके पिता को बुलाकर इसे अपने दुष्ट एवं उच्छृंखल लड़के को शिक्षा देने के लिए कहा। सेठ दत्त को समझाकर हार गया, पर वह चिकना - चुपड़ा मल्ल था, उस पर पिता की किसी भी शिक्षा का कोई असर नहीं हुआ। जो बचपन से ही कुसंगति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और निरंकुशता का शिकार रहा, वह अब जवानी में भला क्या सुधरता ? सेठ के सब प्रयत्न बेकार साबित हुए। आखिर निराश होकर एक दिन सेठ ने उसे मार - पीट कर अपने घर से बाहर निकाल दिया।

दत्त को अब और अधिक आजादी मिल गई। वह चोर और लुटेरों की कुसंगति में पड़ गया, दुर्व्यसन में फँस गया और धीरे - धीरे बड़ा क्रूर चोर बन गया। बचपन से ही समाज के प्रति उसके मन में घृणा के बीज अंकुरित हुए थे, अब वे पल्लवित हो गए। दृढ़-प्रहारी एक हत्यारे दस्यु-राज के रूप में प्रसिद्ध हो गया। उसके हाथ में हर समय नंगी तलवार लपलपाती रहती थी। वह और उसका एक मात्र साथी तलवार। जब भी कहीं कोई संघर्ष होता, तब उसका फैसला वह तलवार करती।

दृढ़-प्रहारी का आतंक दूर - दूर तक फैल गया। एक बार वह किसी ब्राह्मण के घर में चोरी करने के लिए घुसा। द्वार पर ब्राह्मण की गाय खड़ी थी, उसने अनजाने आदमी को घर में घुसते देखा, तो सींगों से मारने लिए सामने दौड़ी। दृढ़-प्रहारी ने गाय की गर्दन पर तलवार का एक ही ऐसा वार किया कि खून से लथपथ गाय, दो टुकड़े होकर भूमि पर गिर पड़ी। गाय गिरी तो, धमाके की आवाज से ब्राह्मण की नींद टूट गई, उसने चोर को घर में घुसा देखा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो लाठी उठाकर खड़ा ही गया, सामना करने के लिए। क्रूर चोर ने एक ही चोट में ब्राह्मण को मौत के घाट उतार दिया। ब्राह्मण की भयंकर चीख से ब्राह्मणी भी नींद से हड़बड़ा कर उठ खड़ी हुई। वह गर्भवती थी। ब्राह्मण को मरा देख वह जोर से चिल्लाई। दुष्ट चोर ने एक ही झटके में ब्राह्मणी के भी दो टुकड़े कर डाले। ब्राह्मणी धड़ाम से धरती पर गिरी, तो धक्के से उसका कच्चा गर्भ भी भूमि पर बाहर आ गिरा, और कुछ ही क्षणों में मर गया।

एक ओर गाय के टुकड़े पड़े हैं। दूसरी ओर ब्राह्मण का मृत शरीर रक्त से लथपथ है। इधर ब्राह्मणी का धड़ कहीं पड़ा है, तो सिर कहीं! मांसपिंड के रूप में भ्रूण का दृश्य तो ऐसा बीभत्स कि उस ओर देखा ही नहीं जा सकता था। चारों ओर खून की धाराएँ बह रही थीं। दृढ़-प्रहारी ने यह दृश्य देखा, तो उसका पत्थर-सा हृदय भी एक बारगी 'धक-धक' कर उठा। यह भयंकर दृश्य उसके हृदय को कचोटने लगा। आखिर, मनुष्य का हृदय था। करुणा की हल्की-सी लहर से वह सिहर उठा।

मनुष्य अंधा होकर पाप कर लेता है, पर जब आँख खोल कर उस पाप के परिणाम को देखता है, तो स्वयं उस पर आँसू बहाकर कभी सिसक भी उठता है। दृढ़ प्रहारी का हृदय रो पड़ा, अपने कृत पाप पर उसे घृणा हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन में तीव्रतम पश्चात्ताप होने लगा। भावना का प्रवाह बदल गया। क्रूर मनोवृति पश्चात्ताप की आग में तपकर करुणा और वैराग्य के रूप में निखर उठी। अपने नृशंस आचरण के प्रति इतनी ग्लानी हुई कि उसने तलवार दूर फेंक दी, वहीं पर उसने अपना डाकू और हत्यारे का वेश छोड़कर मुनि-वेश धारण कर लिया। पवित्र मन से अपने पापों की आलोचना की और भविष्य में पाप न करने का संकल्प किया। वह अब पूर्व दिशा में दरवाजे के बाहर आकर ध्यानस्थ खड़ा हो गया। उसने संकल्प किया—"जब तक मन में इस पाप की स्मृति भी बनी रहेगी, तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा।"

कुसंस्कारों ने एक कुलीन वणिक् - पुत्र को क्रूर एवं निर्दय डाकू बना दिया। किन्तु, जब अन्तर् के सुसंस्कार जगे, तो कुछ ही क्षणों में वह डाकू से साधु बन गया।

प्रातः लोगों ने देखा—"दृढ़-प्रहारी चोर साधु का वेश लिए ध्यानस्थ खड़ा है। किसी को भी विश्वास नहीं आया उसकी साधुता पर। भावनाओं के उतार-चढ़ाव की अथाह गहराई को साधारण दृष्टि पकड़ भी तो नहीं सकती। लोगों ने उसे गालियाँ दीं—"ढोंगी ! धूर्त, बदमाश !! चोरियाँ और हत्याएँ करके अब साधुता का ढोंग रचा है ?" किसी ने उस पर थूका, किनी ने ढेले फेंके, किसी ने लातों से मारा, तो किसी ने उसे लाठी और डंडों से पीटा भी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृढ़-प्रहारी अब 'दृढ़-आचारी' बन गया था। वह एक महा-वृक्ष की तरह इन आँधियों में अडोल खड़ा रहा। मन में क्रोध की एक लहर भी न उठने दी। शान्ति और क्षमा का अजस्र-स्रोत बहता रहा।

डेढ़ महीने तक पूर्व के द्वार पर तप करने के बाद मुनि दृढ़-प्रहारी पश्चिम के दरवाजे पर जाकर डेढ़ महीने के लिए कायोत्सर्ग करके खड़े हो गए। इधर भी लोगों ने उसी प्रकार ताड़ना, तर्जना एवं यातना दी। मुनि धीरता से सब-कुछ सहते रहे। तीसरी बार दक्षिण के दरवाजे पर फिर डेढ़ महीने का कायोत्सर्ग किया। वहाँ भी अपने धैर्य को कसौटी पर खरा उतरा देखकर मुनि ने उत्तर के द्वार पर आकर पुनः डेढ़ महीने का कायोत्सर्ग कर लिया।

मुनि का मन क्षमा-प्रधान तप एवं ध्यान की आग में तपकर एकदम उज्ज्वल हो गया था। छह मास की कठोर साधना से हृदय में परम संवेग का अनन्त अक्षय स्रोत उमड़ पड़ा। जीवन भर के कलुष-कलिमलों को धोकर आखिर में केवलज्ञान प्राप्त किया। सदा-सर्वदा के लिए मुक्त हो गए।

मनुष्य का हृदय बदल जाता है, तो उसका समूचा जीवन ही बदल जाता है। और हृदय तब बदलता है—जब पाप के प्रति सच्ची घृणा हो जाती है।

— आत्मप्रबोध, पत्र ४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुदत्त नाम के एक महान् तपस्वी एवं मनोज्ञानी साधु, भिक्षा के लिए घूमते-फिरते 'यक्ष' श्रावक के घर पहुंच गए।

'यक्ष' वसन्तपुर का तत्त्व - ज्ञानी श्रावक था। साधुओं की सेवा - भक्ति और धर्म - चर्चा में प्रमुख था वह। मुनि को घर पर आते देखा, तो बहुत प्रसन्न हुआ। आहार - दान के लिए घर में इधर - उधर देखा, परन्तु कोई भी शुद्ध वस्तु उसके ध्यान में नहीं आई। भोजन अभी बना नहीं था। आखिर एक कोने में घी का घड़ा भरा दिखाई दिया। बड़े ही भक्ति-भाव पूर्वक मुनिवर से घी लेने की प्रार्थना की। मुनि ने पात्र रखा, और यक्ष ने बहुत ही उच्च भावों के साथ घी की धारा मुनि के पात्र में उडेलनी शुरू की।

मुनि मनोज्ञानी थे। एकाएक उनका ध्यान यक्ष की उच्च भावनाओं की ओर चला गया। ज्योंही भावनाओं के उत्क्रमण पर उनका ध्यान केन्द्रित हुआ, तो पात्र से ध्यान हट गया। घी से पात्र भर गया था, फिर भी मुनि का ध्यान नहीं लौटा, ताकि इन्कार करें। यक्ष भी तीव्रातितीव्र भावनाओं के साथ घी देता ही चला गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घी पात्र से बाहर बह निकला। मुनि का ध्यान अब भी नहीं टूटा। पर, यक्ष को बढ़ती हुई भाव-धारा टूट गई। वह सोचने लगा—"यह कैसा मुनि है ? पात्र भरने पर भी इसके मुँह से 'बस' तक नहीं निकलता। यह कितना लोभी और प्रमादी है, ऐसे मुनि को दान देने से क्या लाभ ?"

यक्ष की भाव-धारा को देखने की धुन में मुनि घी की धारा को अब तक देख नहीं पाए थे। घी बाहर बह रहा है, वह यह भी नहीं देख सके थे। परन्तु, जब यक्ष की ऊँची चढ़ती भावनाओं को नीचे गिरते हुए देखा, चिन्तन - मग्न अवस्था में ही सहसा बोल पड़े—"मत गिर ! मत गिर !"

यक्ष को मुनि की उक्ति पर क्रोध आ गया। वह रोष को मन-ही-मन पी नहीं सका, फलतः क्षुब्ध स्वर बाहर में फूट ही पड़े— "कैसा पागल साधु है यह ? गिरते हुए घी को कहता है—मत गिर, मत गिर ! यों बोलने भर से जड़ घी कहीं नीचे गिरने से रुक सकता है ?"

यक्ष के शब्द कानों से टकराए, तो मुनि का चिन्तन भंग हो गया। घी को पात्र से बाहर बहते देखा, तो खेद के साथ बोल उठे—"मिच्छामि दुक्कडं" भूल हो गई, घी पात्र से बाहर बह निकला।"

यक्ष को मुनि के इन शब्दों पर बड़ी झुँझलाहट हुई। वह अपने उफनते हुए क्रोध पर संयम नहीं कर सका, बोल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पड़ा--"अब 'मिच्छामि दुक्कडं' याद आया है ? इतनी देर कहाँ चले गए थे ? घी को गिरने से रुकने को तो कहा, पर इसने श्रीमान् की आज्ञा का कहाँ पालन किया ? वह तो गिरता ही जा रहा था।"

यक्ष के तीखे व्यंग्य विष-बुझे बाण जैसे थे। पर अमृत को विष कभी उद्वेलित कर सका है ? मुनि का हृदय विषाक्त वाक्य बाणों से आहत होकर भी शान्त रहा। बड़ी गम्भीरता से उन्होंने कहा--"श्रावक ! संयम से काम लो। व्यर्थ ही ऐसे कठोर वचन कह कर अपने आप को क्यों गिरा रहे हो ? यह तो तुम्हारे लिए 'फोड़े पर फुन्सी' जैसा हो रहा है।"

यक्ष मन-ही-मन सोचने लगा-- "कैसा पागल जैसा प्रलाप कर रहा है मुनि ? अपने को तो नहीं, उल्टा मुझे ही गिरा हुआ बता रहा है।" उससे चुप नहीं रहा गया, बोला- "महाराज ! आप तो रोष में मुझे ही गालियाँ दे रहे हैं ?"

सुदत्त मुनि ने कहा--"मेरे मन में न पहले ही रोष था और न अब ही है। यह तो जैसा मैंने देखा,वैसा कह दिया।"

यक्ष--"क्या देखा आपने ? कुछ बतलाइए तो सही?"

मुनि ने गम्भीर होकर कहा— "जब मैं भिक्षा के लिए तुम्हारे घर आया,तो तुम्हारे भाव बड़े उच्च और निर्मल थे। मैं उन्हीं भावों का विश्लेषण करने में लग गया और पात्र की ओर से मुझे विस्मृति हो गई। मैंने देखा--तुम्हारा विशुद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिणाम प्रतिक्षण उच्च-उच्चतर देव-गति के आयुष्य-बन्ध की निम्न भूमिकाओं को पार करता हुआ अच्युतकल्प (बारहवाँ स्वर्ग) तक चला गया है। जब घी नीचे गिरने लगा, तो तुम्हारे विचार दूषित होने लग गए और तुम देव-गति की उच्च भूमिका से नीचे गिरने लगे, तभी मैंने तुम्हें लक्ष्य करके कहा—'नीचे मत गिर !' घी की ओर मेरा ध्यान तब भी नहीं था। मैं तो तुम्हारे चढ़ते - उतरते परिणामों को ही देख रहा था।"

'यक्ष' मुनि की ओर अपलक देखता रहा। मन में पश्चात्ताप की एक हल की-सी लहर उभरने लगी। मुनि ने बात आगे बढ़ाई—"जब मेरी बात पर तुम्हें रोष जग गया, और आक्रोश - पूर्वक व्यंग्य करते हुए तुमने कठोर वचन कहे, तब तो तुम्हारी आत्मा स्वर्ग के आयुष्य - बंध से तो क्या, सम्यग्-दर्शन से भी पतित होकर पशु-योनि के आयुष्य का बन्ध करने की स्थिति में पहुंच गई थी। इसी स्थिति को लक्ष्य करके मैंने कहा—'तुम्हारा यह कार्य तो फोड़े पर फुन्सी जैसा हो रहा है।' श्रावक ! मेरे मन में रोष जैसा कुछ नहीं है। मैंने तो तुम्हारे मनोभावों का बिगड़ता चित्र देख कर ही सहज-भाव से यह बात कही थी।"

मुनि के द्वारा मनोभावों का यथार्थ विश्लेषण सुना, तो 'यक्ष' का मन पश्चात्ताप से भर उठा। अपने आप पर उसे बहुत ग्लानि हुई। स्वर्ग से गिर कर पशु - योनि तक पहुंचने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की मनोदशा पर मन उद्विग्न हो गया। बोला—"भगवन्! अब फिर पात्र रखिए, मैं घी का दान करूँ, ताकि पुनः स्वर्ग के आयुष्य का बन्ध हो जाए।"

मुनि सुदत्त ने मधुर स्मित के साथ कहा—"भद्र! घी देने से कोई देव-आयुष्य का बन्ध नहीं करता। यह तो दाता की उच्च और विशुद्ध भावना पर ही निर्भर है। वस्तु मुख्य नहीं, भाव मुख्य है। और वह उच्च भाव, फल की आकांक्षा किए बिना निष्काम-भाव से दान करने पर ही आता है। स्वर्ग के लिए घी देना, तो सौदा है, दान-धर्म नहीं।"

'यक्ष' श्रावक को अपने दुष्कृत पर बार-बार पश्चात्ताप होने लगा। मुनि से अपने दुष्कृत - अपराध के लिए क्षमा माँगी। और कहा— "प्रभो! मैं अपने मन को शान्त रख सकूँ, वह मार्ग बताएँ।"

मुनि तो क्षमा - शील थे ही। यक्ष को जीवन-मंत्र देते हुए बोले—"श्रावक। जीवन में किसी का दोष देखना नहीं चाहिए, यह पहली बात है। यदि प्रत्यक्ष में कभी किसी में कुछ दोष दिखाई पड़े भी, तो उस पर विद्वेष और रोष नहीं करना चाहिए, यह दूसरी बात है। मन की समता और शान्ति के ये दो मंगल सूत्र हैं। जीवन-मंत्र बना कर चलो, तुम्हें शाश्वत शान्ति प्राप्त हो सकेगी!"

—कथा-कोष प्रकरण, (जिनेश्वर सूरि) कथा १९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अक्षय कोष मिल गया १२

माँ की आँखों में आँसू देखकर कपिल का हृदय द्रवित हो उठा। "माँ, यह सुन्दर एवं विशाल शोभायात्रा देखकर और सब लोग तो खुश हो रहे हैं, तुम रोती क्यों हो ? क्या बात है माँ, बताओ मुझे"—कपिल ने माँ से पूछा।

माँ ने बात को टालने की चेष्टा की, पर कपिल का बालहठ जो था, वह पूछता ही रहा। आखिर माँ ने कहा—"बेटा ! एक दिन अपने घर से भी इसी तरह जुलूस राज-दरबार में जाते थे। यहाँ का राजा जितशत्रु तुम्हारे पिता का बड़ा सम्मान करता था, राज-पुरोहित थे तुम्हारे पिता। किन्तु, उनकी मृत्यु के बाद यह पद अपने घर से चला गया। आज यह तेरे पिता के पद पर आए दूसरे पुरोहित की शोभ-यात्रा देखकर वही बीती याद उभर आई ?"

"माँ, क्या मैं अपने पिता का पद फिर से प्राप्त कर सकता हूँ ?"—कपिल ने पूछा।

"हाँ बेटा, क्यों नहीं ! पर तुम पढ़ो तब न ? अभी तो कुछ पढ़ते ही नहीं हो, खेल - कूद में समय गँवा रहे हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसार में अनपढ़ की कोई इज्जत नहीं करता। सभी जगह विद्वान् की ही पूजा होती है।"

"अच्छा माँ, अब मैं अवश्य ही पढ़ूंगा—तुम अपने आँसू पोंछो। पिता के इसी पद पर एक दिन तुम्हारा लाड़ला बेटा बैठेगा माँ।"

कपिल के हृदय में अध्ययन की तीव्र भूख जग उठी। वह पढ़ाई में जुट गया। किन्तु, उसकी माँ 'यशा' जानती थी—"कौशाम्बी के विद्वानों में कितनी ईर्ष्या और डाह है। यहाँ के पंडित एक-दूसरे को देखकर जलते रहते हैं। कपिल को यहाँ कोई उच्च शिक्षा नहीं देगा। जानते हैं—राजपुरोहित काश्यप का पुत्र पढ़-लिख कर एक दिन राजपुरोहित-पद का अपना परम्परागत अधिकार प्राप्त कर सकता है। और तब राज-दरबार में उनकी दाल कैसे गलेगी?" यह सोच कर यशा ने काश्यप के मित्र उपाध्याय 'इन्द्रदत्त' के पास कपिल को श्रावस्ती भेज दिया।

श्रावस्ती में उपाध्याय इन्द्रदत्त को कौन नहीं जानता? वह श्रावस्ती का बहुश्रुत और वृद्ध विद्वान् था। कपिल उनके पास पहुंचा। अपना परिचय दिया। उपाध्याय ने मित्र-पुत्र को अपने पुत्र की तरह समझा। श्रावस्ती के धनाढ्य सेठ शालिभद्र के घर कपिल के रहने और भोजन की व्यवस्था कर दी गई। कपिल निष्ठापूर्वक विद्याध्ययन में जुट गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्याध्ययन करते-करते कपिल यौवन के द्वार पर पहुंच गया। शालिभद्र के घर पर एक सुन्दर दासी थी। बड़ी नटखट और चंचल। कपिल की व्यवस्था उसी के जिम्मे थी। दोनों में परिचय बढ़ा, बढ़ते-बढ़ते परिचय प्रेम में बदल गया, और अन्दर-ही-अन्दर एक - दूसरे के स्नेह - पाश में आबद्ध हो गए। अब प्रेम की पढ़ाई शुरू हुई, तो गुरुकुल की पढ़ाई छूटने लग गई। आचार्य कपिल को बार - बार झिड़कते,—"आज कल पढ़ने में ध्यान नहीं है तुम्हारा ? क्यों, क्या बात है ? दिमाग कहाँ चक्कर काट रहा है ?" आचार्य की फटकार पर कपिल चुप हो जाता। धीरे - धीरे गुरुकुल में जाना भी छूट गया। अब कपिल दासी के साथ उन्मुक्त भाव से प्रणय लीला में मस्त रहने लगा। वह यह भूल गया कि उसने माँ के आँसू पोंछने का वादा किया है। विद्वान् बनने के लिए ही तो श्रावस्ती आया है। वह अपने पिता के मित्र का अतिथि है। परन्तु, कपिल दासी के व्यामोह में, प्रेम में पूर्ण रूप से अंधा हो कर दिन-रात दासी के ही पीछे लगा रहता।

एक बार नगर में वन - महोत्सव की तैयारियाँ होने लगीं। उत्सव में नगर की तरुण नारियाँ नये - नये वस्त्राभूषण पहन कर वन - विहार के लिए जातीं और उन्मुक्त भ्रमण एवं क्रीड़ाएँ करतीं। दासी ने कपिल से कहा—"मुझे मूल्यवान रेशमी वस्त्र नहीं, तो कोई साधारण-सा नवीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्त्र ही लाकर दो। हीरे - मोती के हार नहीं दे सकते, तो फूलों के दो-चार गजरे ही खरीद सकूँ—इतने पैसे तो लाओ। नहीं तो हमजोली सखी-सहेलियों के बीच इस गिरी दशा में वन-क्रीड़ा को कैसे जाऊँगी ? अब तो मैं तुम्हारी हूँ। तुम्हें ही मेरा सबकुछ करना पड़ेगा।"

कपिल के पास क्या था ? वह तो भिक्षुक बनकर आया था, विद्यार्थी था। अन्न-वस्त्र की आवश्यकता शालिभद्र के घर से पूरी हो जाती थी और विद्याध्ययन की व्यवस्था उपाध्याय इन्द्रदत्त के यहाँ थी। दासी की बातों पर उसका मन गंभीर हो गया। वह कुछ बोल नहीं सका।

दासी ने कहा—"चुप रहने से नहीं चलेगा। कुछ उद्यम करो। संसार बसाते हो, तो धन के बिना कैसे चलेगा ?"

—"परन्तु मेरे पास तो एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। धन लाऊँ, तो कहाँ से लाऊँ ?" कपिल ने चिन्तातुर होकर उत्तर दिया।

दासी ने एक उपाय बताया—"धन - प्राप्ति के सीधे उपाय दो हैं—भिक्षा या चोरी। ब्राह्मणपुत्र हो, भिक्षा माँगने में तुम्हें कोई संकोच नहीं। जानते ही हो, श्रावस्ती में एक धनदत्त नाम का सेठ है। प्रभात-वेला में सबसे पहले जाकर जो कोई उसे आशीर्वाद देता है, उसे वह दो मासा स्वर्ण दान करता है। तुम वहाँ जाओ। इतने-से स्वर्ण से कम-से-कम वन महोत्सव की सामग्री तो आ ही जाएगी।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कपिल के निराशा-भरे हृदय में आशा की लहर दौड़ गई—"प्रातःकाल सबसे पहले सेठ को दिन के मंगलमय होने का आशीर्वाद दूँगा और दो मासा सोना ले आऊँगा।" इन्हीं विचारों में रात - भर उसे नींद नहीं आई। बार-बार चादर से मुँह निकाल कर टिमटिमाते तारों की ओर देखता। अब रात कितनी बाकी है ? मेरे से पहले ही कोई पहुंच न जाए ! कपिल का मन अधीर हो रहा था। आतुरता धैर्य को तोड़ डालती है। प्रतीक्षा का एक पहर भी वर्ष जितना लम्बा लगता है। कपिल स्वर्ण-लाभ की प्रतीक्षा में आतुर हो रहा था। तारों के झिलमिल प्रकाश में उसे रात का कोई अन्दाज रहा नहीं। पागल की तरह घर से निकल गया। गलियों में ठोकरें खाता हुआ, इधर - उधर भटकता हुआ धनदत्त के घर की ओर बढ़ा जा रहा था।

"ऐ कौन है ? कहाँ जा रहा है ?— किसी की तीखी आवाज सुनकर कपिल वहीं ठिठक गया। यमदूत - सी दो भीमकाय काली छाया उसके पीछे-पीछे आ रहीं थीं। कपिल का हृदय धक-धक कर उठा।

"इतनी गहरी रात में कहाँ जा रहे हो ? चोरी करने?"

कपिल ने गिड़गिड़ाते हुए कहा—"चोरी नहीं। ब्राह्मण का बेटा हूँ। भिक्षा माँगने के लिए धनदत्त सेठ के घर पर···!"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कपिल अपनी बात ठीक तरह कह भी नहीं पाया था कि पहरेदारों ने उसको पकड़ लिया—"बदमाश है, चोर है। रात को कोई भीख मांगने निकलता है ? दिन भिखारियों का, रात चोरों को। झूठ बोलकर हमें बना रहा है।" कपिल को पकड़ कर कारागार में ठूँस दिया। वहाँ और भी कई शराबी और चोर भरे पड़े थे। गंदगी और बदबू के मारे उसका सिर फटा जा रहा था। माँ की छल - छलाई आँखें उसके सामने तैरने लगीं। कहाँ भटक गया ? पढ़ने आया था—पिता के समान विद्वान् बनने के लिए। और यहाँ कहाँ प्रेम में फँस गया ? प्रेम के उन बीते मधुर क्षणों के साथ वह आज की इन कठोर यंत्रणाओं की तुलना करने लगा। अतीत का पूरा दृश्य, चित्र बनकर उसके सामने आ गया। भविष्य की अंधकार पूर्ण टेढ़ी-मेढ़ी काली रेखाएँ जैसे उसकी आँखों की रोशनी में साफ दिखाई दे गईं। कपिल की यह रात आत्म-निरीक्षण और चिन्तन में बीती।

व्यवस्था के अनुसार प्रातःकाल सूर्योदय होने पर रात्रि के निगृहीत अपराधी चोर-उचक्कों, शराबी और व्यभिचारियों के साथ कपिल को भी राजा प्रसेनजित के समक्ष उपस्थित किया गया। राजा प्रसेनजित अपराधों की जाँच स्वयं करता था और अपराधी को कठोर शिक्षा देता था। कपिल थर-थर काँप रहा था। उसकी आँखें शर्माई हुई थीं, पश्चात्ताप के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आँसुओं से भींगी-भींगीं। वह अपने को छिपाने की चेष्टा कर रहा था, कहीं उपाध्याय इन्द्रदत्त उसे इस पंक्ति में खड़ा देख न लें। राजा प्रसेनजित ने अपराधी की विचित्र मनःस्थिति देखी। सोचा—यह अपराधी नहीं है, परिस्थिति का मारा कोई भूला-भटका भद्र युवक है। राजा ने उस पर एक तीखी निगाह डाली और कड़कती आवाज से पूछा— "क्यों रे, रात्रि को कहाँ चोरी करने निकला था ?"

कपिल ने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए कहा—"महाराज! चोरी जैसा अनार्य-कर्म मैं ब्राह्मण-पुत्र कैसे कर सकता हूँ ? भीख माँगने निकला था। सिर्फ दो मासा सोने के लिए।"

राजा को कपिल की बात बड़ी विचित्र लगी। कहा— "सच-सच बतलाएगा, तो माफ कर दिया जाएगा। कुछ भी झूठ कहा तो याद रख, प्रसेनजित के राज्य में झूठ का दंड सब से कठोर है।"

कपिल ने नपे-तुले शब्दों में अपने जीवन का बीता घटनाचित्र राजा के सामने रख दिया। घर से चलने से लेकर बन्दी बनने और उसके बाद पश्चात्ताप के आँसू बहाने तक की कहानी राजा को सुना दी।

कपिल की शारीरिक दशा एवं वाणी के टूटते और काँपते स्वर उसकी मनःस्थिति को स्पष्ट कर रहे थे कि वह अपराधी नहीं है। उसकी सत्य-निष्ठा और करुण अवस्था पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा का हृदय पसीज उठा। सोचा—भूख और गरीबी का प्रतिकार राजदंड से नहीं किया जा सकता। समस्या के मूल को समझ कर उचित हल करना हो तो नीति है। राजा ने कहा—"ब्राह्मण ! तुम केवल दो मासा सोने के लिए आधी रात को घर से निकल पड़े ! दो मासा स्वर्ण से क्या होगा ? लो, तुम्हें जितना चाहिए—माँग लो !"

उसे सहसा विश्वास नहीं आया। कहीं मेरी मूर्खता का मजाक तो नहीं हो रहा है ?" वह विचार में पड़ गया।

राजा ने पुनः सम्बोधित किया—"ब्राह्मण-कुमार ! सोचते क्या हो, जो चाहिए वह माँग लो, मैंने वचन दिया है।"

कपिल की विचार-धारा गहरी उतर गई। क्या मांगे ? दो मासा सोना ही माँग ले ? फिर क्या फायदा, आकाश से गिरा खजूर में अटक गया ? सौ स्वर्ण मुद्रा ? गृहस्थी बसानी जो है। कपड़े चाहिए, बर्तन चाहिए खाने - पीने की सामग्री चाहिए। तो, हजार स्वर्ण मुद्रा मांग लूं ? किन्तु, पत्नी के आभूषण किससे बनेंगे फिर ? लाख स्वर्ण मुद्रा के बिना तो कुछ भी नहीं होगा, न आभूषण और न मकान ? कपिल विचारों की उड़ान में बहुत दूर उड़ा जा रहा था।

राजा ने उसकी विचार-तन्द्रा को झकझोरा—"युवक ! बहुत गहरे विचार में डूब गए ? जो मांगना है—शीघ्र माँगो, देखो—विलम्ब हो रहा है।" राजा को भय हुआ, कहीं मेरा राज्य ही न माँग बैठे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कपिल कोई निर्णय नहीं कर सका। दौड़ती इच्छा कोटि स्वर्ण-मुद्राओं को भी लाँघ गई। जहाँ तक भी गया, अभावों की खाई आगे, और आगे अधिक चौड़ी होती गई। वह इसे पाट न सका। कहीं विराम ही नहीं मिला। इच्छाएँ मन के असीम आकाश में मुक्त विहंगों की तरह पर फैलाए उड़ने लगीं। तभी अचानक एक झटका लगा। भावधारा ने पलटा खाया। सोचने लगा—"अरे! किधर बह गया? दो मासा सोने के लिए आया था और अब तो कोटि-कोटि स्वर्ण-मुद्राओं से भी मन की तृप्ति नहीं हो रही है? उड़ने को अनन्त गगन मिला, तो पक्षी उड़ता ही गया, कहीं रुका नहीं। इस उड़ान का कहीं किनारा भी है?"— उसका चिन्तन अन्तर्मुखी हो चला।

"जहाँ लाभ होता है, वहाँ लोभ बढ़ता है। लोभ के तूफान में मैं भटक गया हूँ। आशा-तृष्णा के उद्दाम प्रवाह में बह गया हूँ। जब तक इसका अन्त नहीं करूँगा, मन को शान्ति नहीं हो सकती। सोना और मणि-मुक्ता आज तक किसी को शान्ति नहीं दे सके। इनका त्याग एवं सन्तोष ही तो शान्ति का साधन है। वही मेरे सुख का अक्षय-कोष है। वह तो मेरे अन्दर है। उसे प्राप्त करना मेरा अपना अधिकार है। फिर राजा से मैं क्या माँगू? वह धन दे सकता है, परन्तु शान्ति और सुख तो नहीं दे सकता।"

"अरे तुम कैसे हो? अभी तक कुछ नहीं सोच पाए? जल्दी करो, जो माँगना है, माँग लो! इतने क्या विचारों में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डूब गए ?"—राजा की तीखी आवाज ने कपिल का ध्यान सहसा भंग कर दिया।

"हाँ, सोच लिया सम्राट् ! जो चाहिए था, वह मिल गया। अब न कुछ सोचना है, न कुछ माँगना है।"

राजा ने चकित हो पूछा—"क्या सोचा तुमने ? और, क्या मिल गया ?"

"राजन् ! ज्यों - ज्यों लाभ होता है, त्यों - त्यों लोभ बढ़ता है। लाभ और लोभ की दौड़ में अन्ततः लोभ ही आगे रहता है। मैंने यह दौड़ खत्म कर दी है। मैंने ऐसा लाभ पा लिया है, जो कभी लोभ से पराजित नहीं होता है। आत्मा का जो अनन्त वैभव और ऐश्वर्य मुझे मिला है, वह तुम्हारे राजकोष में कहाँ है ? इच्छा की ठोकरें खाता-खाता अब में उसका स्वामी बन गया हूँ। कुछ क्षण पहले का वह आशा का दास, अब आशा का सम्राट् है। अस्तु, अब इसे कुछ नहीं चाहिए।"

राजा प्रसेनजित कपिल के जीवन का यह अद्भुत परिवर्तन देख कर स्तब्ध रह गया। दया की जगह श्रद्धा जागृत हो गई। राजा कपिल के चरणों में झुक गया। तब तक कपिल ने खड़े-खड़े ही अपना मुंडन (केश-लुंचन) अपने ही हाथों से कर लिया था। सिर का ही मुंडल नहीं, मन का भी मुंडन करके वह सच्चा त्यागी बन गया। लोभ से अलोभ की ओर, कामना से निष्कामना की ओर बढ़ गया।

—उत्तराध्ययन, चूर्णि ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण भगवान् महावीर के युग की बात है—कृतांगला नगरी में सिंहरथ नाम का राजा राज्य करता था। उसकी सुनन्दा नाम की रानी थी। सुनन्दा के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम रखा गया 'दमसार।'

राजकुमार दमसार युवावस्था में पहुंचा तो माता-पिता उसके विवाह की तैयारियाँ करने लगे। परन्तु, इसी बीच दमसार ने प्रभु महावीर की वाणी सुनी तो उसका हृदय ज्ञान - वैराग्य की रसधार में गहरी डुबकी लगा गया, उसने माता-पिता के समक्ष दीक्षा का प्रस्ताव रखा।

उत्कट वैराग्य का प्रवाह उमड़ता है, तो उसे कोई रोक नहीं सकता। माता-पिता ने, परिजन एवं पुरजनों ने बहुत कुछ इधर-उधर के उतार चढ़ाव किए, एक-से-एक बढ़कर स्नेह-बन्धन डाले, किन्तु दृढ़ – निश्चयी दमसार ने अत्यन्त आग्रह करके अन्ततः माता - पिता से दीक्षा की स्वीकृति ले ही ली और प्रभु महावीर के चरणों में जाकर मुनि - धर्म स्वीकार कर लिया।

दमसार ऋषि अब शास्त्राध्ययन करके तीव्र तपः साधना में जुट गये। तपस्वी को ही उन्होने अपनी धर्म - साधना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का लक्ष्य बनाया। एक दिन भगवान् महावीर के पास आकर उन्होंने यावज्जीवन मासक्षमण तप करते रहने का अभिग्रह ले लिया। कठोर तपस्या से शरीर जर्जर हो गया, रक्त एवं मांस सूख गया, एक तरह से शरीर नसों व अस्थियों का ढांचामात्र रह गया।

एक बार दमसार ऋषि के मन में विकल्प अंकुरित हुआ—"इतनी कठोर तपस्या करने पर भी मुझे केवलज्ञान क्यों नहीं हो रहा है? कहीं मेरे साधना-क्रम में भूल तो नहीं है? मैं भव्य तो हूँ न?" मन शंकाकुल हुआ, तो वे उस समय चम्पानगरी के बाहर वन-खण्ड में पधारे हुए प्रभु महावीर के समवसरण में पहुंचे। 'वंदामि नमंसामि' के बाद प्रश्न पूछा, तो सर्वज्ञानी सर्वदर्शी प्रभु ने कहा—'दमसार। मन को शंकाग्रस्त न करो! तुम भव्य हो, इसी जन्म में केवलज्ञानी बनोगे। पर, इधर तुम्हारे अन्तर्-आत्मा में कषाय-भाव प्रबल है। आत्मा में जब तक कषाय की तपन रहती है, केवलज्ञान का कल्पांकुर अंकुरित नहीं हो सकता। चिन्तन और विवेक की अमोघ जलधारा से कषायानल को प्रशमित करो।"

दमसार ऋषि ने प्रभु को सभक्ति वन्दना करते हुए निवेदन किया—"प्रभो! आज्ञा शिरोधार्य है, मैं कषायाग्नि को प्रशमन करने के लिए प्रयत्न करूँगा।"

एक बार मासक्षमण का पारणा था। प्रथम के दो पहर स्वाध्याय एवं ध्यान में गुजार कर तीसरे पहर दमसार ऋषि प्रभु की आज्ञा लेकर पारणा लाने के लिए चम्पानगरी की ओर चले। भर गरमी का महीना। सूर्य की प्रचण्ड किरणें आकाश से सिर पर ज्वाला बरसा रहीं थीं। पैरों के नीचे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धरती दहकते अंगारों की तरह जल रही थी। तृषा से गला सूखा जा रहा था, क्षुधा से पैर लड़खड़ा रहे थे। पीड़ा से आकुल-व्याकुल मुनि किसी तरह चम्पानगरी के प्रवेशद्वार तक आये। सोचा—असह्य धूप हो रही है, नगर में जाने का कोई सीधा और निकट का रास्ता मिल जाये, तो ठीक है। तभी एक नागरिक किसी कार्यवश नगर से बाहर आता दिखाई दिया। आगन्तुक ने मुनि को सामने खड़ा देखा, तो बड़ा खिन्न हुआ। सोचा—'मुण्डित सिर वाला साधु सामने मिल गया, अपशकुन हो गया। अब अभीष्ट कार्य में कैसी सफलता ?" वह वहीं रुक गया। मुनि के प्रति उसके मन में बड़ा रोष था।

मुनि स्वयं यात्री के निकट आये और बोले—"भद्र ! इस नगर की बस्ती में जाने का कोई सीधा रास्ता हो, तो बता दो, ताकि धूप में अधिक पीड़ा न उठानी पड़े।"

नागरिक मुनि को अपशकुन समझकर झुंझलाया हुआ तो था ही। सोचा—इस साधु को रास्ते की जानकारी नहीं है, अतः क्यों न इस मुण्ड को अपशकुन करने का मजा चखा दूँ ? ऐसा रास्ता बताऊँ कि बस जीवन - भर याद करे।" अविवेकी नागरिक ने मुनि को एक गलत रास्ते की ओर संकेत करके कहा—"मुनिवर ! इस रास्ते चले जाओ।"

सरल स्वभावी मुनि उसी रास्ते चल पड़े। परन्तु वह तो बड़ा विकट, ऊबड़ - खाबड़, ऊँचा - नीचा और धूल से भरा हुआ। ऐसा विकट रास्ता कि कदम भर चलना कठिन हो गया। नगर के मकानों की पीठ-ही-पीठ दिखाई दे रही थी, अतः किसी घर में जाने का रास्ता ही नहीं मिला। भूखे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्यासे तपस्वी मुनि चिल - चिलाती धूप में जलते रेत पर चलते - चलते बड़े खिन्न हो गए। वेदना असह्य हो जाती है, तो वह धीरज का बांध तोड़ देती है। मुनि को नागरिक के अकारण दुष्ट व्यवहार पर बड़ा क्रोध आया। सोचा—"इस नगर के लोग कैसे दुष्ट हैं ? बिना किसी स्वार्थ के मुझ जैसे साधु को भी यों संकट में डाल दिया। ऐसे दुष्टों को तो कड़ी शिक्षा करनी चाहिए।"

क्रोधावेश में आए मुनि वहीं एक ओर खड़े होकर 'उत्थान श्रुत' के उद्वेग पैदा करने वाले अंश-विशेष का पाठ करने लगे। मंत्र - प्रभाव तो अचूक होता है। नगर के लोग जो जहाँ भी खड़े थे, घबराने लगे। उद्विग्न होकर इधर-उधर दौड़ने लगे। उन्हें लगा कि जैसे अभी कुछ अनिष्ट होने वाला है ? भयंकर विपत्ति आने वाली है ? मन - मस्तिष्क पर प्रलय - जैसा दृश्य चक्कर काटने लगा। नगर में भयंकर कोलाहल-सा हो गया। लोग हाय - हाय करने लगे। सबके मन और तन में जैसे जलन-सी होने लगी। किसी के समझ में नहीं आया कि यह सब क्या और क्यों हो रहा है।

नगरजनों का भयानक कोलाहल मुनि के कानों तक पहुंचा। दूसरे ही क्षण लोगों को 'हाय-हाय' करते हुए इधर-उधर दौड़ते भी देखा। बड़ी विचित्र स्थिति थी। कोई कहीं गिर रहा है, तो कोई चिल्ला रहा है, चीख रहा है और कोई पागल की तरह कपड़े फाड़ रहा है। यह सब देख कर मुनि का पहले का वह क्रुद्ध मन सहसा करुणार्द्र हो उठा। लोगों के कष्ट पर उन्हें दया आ गई। और अपने क्रोध पर ग्लानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् की वाणी स्मरण हो आयी—"कषायानल को प्रशमित करो।" मुनि ने तुरन्त ही अपने क्रोध को शान्त किया। अब वे ज्यों ही उत्थान - श्रुत के उद्वेग निवारण करने वाले प्रशमनकारी अंश विशेष को पढ़ने लगे, तो धीरे-धीरे नगर में शान्ति हो गई। सभी लोग पूर्ववत् अपने कार्यों में जुट गए। ऐसा लग रहा था, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

दमसार ऋषि को अपने क्रोध पर पश्चात्ताप होने लगा। वे आहार ग्रहण किए बिना ही नगर से वापस लौट आए। प्रभु के समक्ष उपस्थित हुए, तो भगवान् ने कहा—"दमसार! जो श्रमण क्रोध - कषाय में प्रवृत्त होता है, वह दीर्घ संसारी होता है, चिरकाल तक संसार-वन में भटकता है। और क्रोध को शान्त करने वाला अल्प संसारी होता है, शीघ्र ही मोक्ष-पद प्राप्त करता है। श्रमण धर्म का सार उपशम है, क्षमा है।"

दमसार ऋषि ने प्रभु के समक्ष अपने क्रोध का प्रायश्चित्त किया और दृढ़ संकल्प के साथ क्षमा तथा शान्ति की साधना में जुट गया। मन से कषाय-भाव का विलय हुआ, तो सातवें दिन ही उन्हें 'केवलज्ञान' प्राप्त हो गया।

— आत्म प्रबोध, पत्र ४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरुचिपूर्ण कथा - साहित्य

१	पीयूषघट	५.५०
२	बुद्धि के चमत्कार	२.५०
३	भगवान् महावीर की बोध कथाएँ	३.००
४	जैन इतिहास की प्राचीन कथाएँ	३.५०
५	जैन इतिहास की प्रेरक कथाएँ	३.५०
६	जैन इतिहास की प्रसिद्ध कथाएँ	३.५०
७	प्रत्येक बुद्धों की जीवन कथाएँ	३.५०
८	सोलह सती	४.००

सन्मति ज्ञानपीठ
लोहामण्डी, आगरा-२८२००२
शाखा : वीरायतन
राजगृह : ८०३११६ (बिहार)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org